જ્યોતિશિખા

जीवन जागृति केन्द्र, बंबई

आचार्यश्री रजनीश साहित्य

हिंदी साहित्य	मू. रुपये
* प्रेम के फूल	५–००
* प्रेम और विवाह	१–५०
* मन के पार	१–००
* गीता दर्शन पुष्प–१	३–००
* समाजवाद से सावधान	४–००
* शून्य की नाव	३–००
* अस्वीकृति में उठा हाथ	५–००
* क्रांतिबीज	४–००
* संभोग से समाधि की ओर	५–००
* प्रभु की पगडंडियां	४–००
* सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	१–२५
* बिखरे फूल	०–३५
* सिंहनाद	१–५०
* कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१–००
* अज्ञात की ओर	२–००
* नये संकेत	२–००
* नये मनुष्यके जन्म की दिशा	०–७५
* शांति की खोज	२–००
* क्रांति के बीज सबसे बड़ी दीवार	०–३०
* अमृतकण	०–४०
* अहिंसा दर्शन	०–५०
* ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया (पंच महाव्रत)	४–००
* जिन खोजा तिन पाइयां (कुंडलिनी योग पर दिये गए प्रवचन)	२०–००
* सारे फासले मिट गये	१–२५
* प्रेम है द्वार प्रभु का	८–००
* सत्य की खोज	४–००
* संभावनाओं की आहट	६–००
* गहरे पानी पैठ	५–००
* मैं कहता आँखन देखी	५–००
	वार्षिक मूल्य
* ज्योतिशिखा (त्रैमासिक)	५–००
* युक्रांद (मासिक)	१२–००

English Literature

Original English Booklets

* Eternal Message	2-00
* The Dimensionless Dimension	2-00
* The Only Freedom	8-00
* I am the Gate	7-00
* Turning IN	2-00
* Silent Music	2-00
* What is Meditation	3-00
* Meditation : A New Dimension	2-00
* Beyond and Beyond	2-00
* Flight of the Alone to the Alone	2-50
* The Vital Balance	1-50
* Yoga : As Spontaneous Happening	2-00
* L. S. D.—A Shortcut to False Samadhi	2-00
* Gateless Gate	2-00

Translated From Original Hindi

* From Sex to Super Consciousness	6-00
* Towards the Unknown	1-50
* Seeds of Revolutionary Thoughts	4-50

(शेष कवर पेज ३ पर)

जीवन जागृति केन्द्र

३१ इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन,
मस्जिद बंदर रोड,
बम्बई–९ ३३९५६०
फोन : ३२७६१८

ज्योति शिखा ग्राहक नं.

प्रिय मित्र,

आप 'ज्योति शिखा' के ग्राहक हैं। आपका चंदा ———— को समाप्त हो गया है। कृपया चंदा रु. एक वर्ष मार्च १९७३ तक का तुरंत भिजवाकर आप अपनी प्रतियां सुरक्षित करवा लें और अन्य मित्रों को भी ग्राहक बनवाकर 'ज्योति शिखा' के प्रति अपने प्रेम का परिचय दें।

मंत्री

ग्राहकों को आवश्यक सूचना

छपाई, कागज, डाक आदि की दरों में असाधारण वृद्धि हो जाने के कारण 'ज्योति शिखा' को काफी घाटा वहन करना पड़ रहा है। अतएव जून १९७२ के अंक से, 'ज्योति शिखा' के शुल्क में निम्नलिखित परिवर्तन किया गया है, ग्राहक कृपया नोट कर लें :

एक प्रति : २ रुपये — वार्षिक शुल्क ८ रुपये

आचार्यश्री रजनीशजी की समस्त पुस्तकों का सर्वाधिकार जीवन जागृति केन्द्र, बम्बई के अन्तर्गत सुरक्षित है। प्रकाशन तथा अनुवाद की सुविधा के लिये बम्बई केन्द्र की लिखित अनुमति नितान्त आवश्यक है।

* संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास

संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास

अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में

आचार्यश्री रजनीश

के आध्यात्मिक चिन्तन और विचारों के प्रचार--प्रसार के लिए

अंग्रेजी में द्वै-मासिक

संन्यास

कलात्मक साज-सज्जा, संग्रहणीय पाठ्य सामग्री

वार्षिक शुल्क : १८ रुपये

- जीवन जागृति केन्द्र : ३१ इजराइल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिदबंदर रोड, बम्बई-९
- ए-१ वुडलैंड अपार्टमेंट, पेडर रोड, बम्बई-२६

* संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास *

आचार्यश्री रजनीश की सृजनात्मक जीवन-दृष्टि

का

मासिक पत्र

युक्रांद

मानसेवी सम्पादक :

अरविन्द कुमार

एक प्रति : १ रुपया * वार्षिक शुल्क : १२ रुपये

देश के कोने-कोने में विक्रय एजेन्ट नियुक्त करना है

सम्पर्क करने तथा शुल्क भेजने का पता :

अरविन्द कुमार, सदस्य युक्रांद प्रकाशन समिति,

कमला नेहरू नगर, जबलपुर (म. प्र.) फोन : २९५७

ज्योति शिखा

(आचार्यश्री की अमृतवाणी का संकलन)

मान्यक सम्पादक :

महीपाल

अरविन्द

★

अंक : २४ वां

मार्च १९७२

★

मुखपृष्ठ सज्जा :

रंगरेखा स्टुडियो

प्रकाशन स्थल :

जीवन जागृति केन्द्र

३१, इजराइल मोहल्ला, भगवान भुवन,
मस्जिद बंदर रोड,
बम्बई–९

फोन : ३३९५६०–३२७६१८

•

मुद्रण स्थल :
स्टेट्स पीपल प्रेस,
फोर्ट, बम्बई-१

•

एक प्रति : रु. १–२५

•

अनुक्रम

		पृष्ठ
• वही वही...और वही...	महीपाल	७
• यह मन क्या है ?	... ...	८
• जो बोएंगे बीज वही काटेंगे	... ...	१९
• मेरे पास आओ	ब्रह्मदत्त	२७
• मुक्तक	जगदीश जैन	२८
• मृत्यु और परलोक	... ...	२९
• भगवत्प्रेम	... ...	३९
• जागते...जागते...	... ...	४७
• ब्रह्म के दो रूप	... ...	५९
• आचार्यश्री वचनामृत	... ...	७३

वही वही और.... वही !

चेतना के द्वार खोलो !
कौन अन्तर में निरन्तर
श्वास के सँग गुनगुनाता;
कौन सुरधनु के रँगों में
कल्पनाओं को लजाता ?
कौन गायक, कौन वह अज्ञात सर्जक मौन, बोलो !
गगन को किसने उठाया ?
सूर्य को किसने झुकाया ?
और इस धानी धरा का—
भाग्य फूलों से सजाया !
एक ही अस्तित्व सारा, ब्रह्म-माया दो न बोलो !
वही व्याकुल प्यास से है
वही भरता प्यालियां है ।
उसी में सपने उजड़ते
वहीं बजती तालियां हैं।
पर कहीं तिल का न अन्तर,-भू कँपो या गगन डोलो !
वह अँधेरा, वह उजाला,
वही पर्वत, वही खाई ।
वही जन्मे रूप लेकर,
है उसी की मौत आई ।
वही ,बनता, वही मिटता, किसे नापो किसे तोलो !
उतर गहरे, और गहरे,—चेतना के द्वार खोलो !

—महीपाल

यह मन क्या है?

एक आकाश, एक स्पेस बाहर है, जिसमें हम चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं। जहां भवन निर्मित होते हैं और खण्डहर हो जाते हैं। जहां पक्षी उड़ते, शून्य जन्मते और पृथ्वियाँ विलुप्त होती हैं। यह आकाश हमारे बाहर है। किन्तु यह आकाश जो बाहर फैला है, यही अकेला आकाश नहीं है। 'दिस स्पेस इज नाट द ओनली स्पेस'—एक और भी आकाश हैं, वह हमारे भीतर है। जो आकाश हमारे बाहर है वह असीम है। वैज्ञानिक कहते हैं, उसकी सीमा का कोई पता नहीं लगता। लेकिन जो आकाश हमारे भीतर फैला है, बाहर का आकाश उसके सामने कुछ भी नहीं है। कहें कि वह असीम से भी ज्यादा असीम है। अनंत आयामी उसकी असीमता है। 'मल्टी डायमेंशनल इनफिनिटी' है। बाहर के आकाश में चलना, उठना होता है, भीतर के आकाश में जीवन है। बाहर के आकाश में क्रियाएं होती हैं, भीतर के आकाश में चैतन्य है। जो बाहर के ही आकाश में खोजता रहेगा वह कभी भी जीवन से मुलाकात न कर पायेगा। उसकी चेतना से कभी भेंट न होगी। उसका परमात्मा से कभी मिलन न होगा। ज्यादा से ज्यादा पदार्थ मिल सकता है बाहर, परमात्मा का स्थान तो भीतर का आकाश है, अन्तराकाश है, इनर स्पेस है। जीवन के सत्य को पाना हो तो अन्तर–आकाश में उसकी खोज करनी पड़ती है। लेकिन हमें अन्तर

आकाश का कोई भी अनुभव नहीं है। हमने कभी भीतर के आकाश में कोई उड़ान नहीं भरी है। हमने भीतर के आकाश म एक चरण भी नहीं रखा है, हम भीतर की तरफ गये ही नहीं। हमारा सब जाना बाहर की तरफ है। हम जब भी जाते हैं बाहर ही जाते हैं।

मित्र का प्रश्न इससे संबंधित है। उन्होंने पूछा है कि जब भीतर की, स्वरूप की स्थिति परम आनन्द है तो यह मन कहां से आ जाता है? जब भीतर नित्य आनन्द का वास है, तो ये मन के विकार कैसे जन्म जाते हैं? ये कहां से अंकुरित हो जाते हैं?

इस अन्तर आकाश के सम्बन्ध में उसे भी समझ लेना उपयोगी है। यह प्रश्न सदा ही साधक के मन में उठता है कि जब मेरा स्वभाव ही शुद्ध है तो यह अशुद्धि कहां से आ जाती है? और जब मैं स्वभाव से अमृत हूं तो यह मृत्यु कैसे घटित होती है? और जब भीतर कोई विकार ही नहीं है, निर्विकार, निराकार का आवास है सदा से, सदैव से, तो ये विकार के बादल कैसे घिर जाते हैं, कहां से इनका जन्म होता है, कहां इनका उद्‌गम है? इसे समझने के लिए थोड़ी सी गहराई में जाना पड़ेगा।

पहली बात तो यह समझनी पड़ेगी कि जहां भी चेतना है वहां चेतना की स्वतंत्रताओं म एक स्वतन्त्रता यह भी है कि वह अचेतन हो सकेगी। ध्यान रखें, अचेतन का अर्थ जड़ नहीं होता। अचेतन का अर्थ होता है, चेतन, जो कि सो गया। चेतन, कि छिप गया। यह चेतना की ही क्षमता है कि वह अचेतन हो सकती है। जड़ की यह क्षमता नहीं है। आप पत्थर से यह नहीं कह सकते कि तू अचेतन है। जो चेतन नहीं हो सकता वह अचेतन भी नहीं हो सकता। जो जाग नहीं सकता, वह सो भी नहीं सकता। और ध्यान रखें, जो सो नहीं सकता वह जागेगा कैसे? चेतना की ही क्षमता है अचेतन हो जाना। अचेतन का अर्थ चेतना का नाश नहीं है। अचेतन का अर्थ है चेतना का प्रसुप्त हो जाना, छिप जाना, अप्रगट हो जाना। चेतना की मालकियत है यह, कि चाहे तो प्रगट हो चाहे तो अप्रगट हो जाय। यही चेतना का स्वामित्व है। या कहें, यही चेतना की स्वतन्त्रता है। अगर चेतना अचेतन होने को स्वतन्त्र न हो तो चेतना परतन्त्र हो जायेगी। फिर आत्मा की कोई स्वतन्त्रता न होगी। इसे ऐसा समझा कि अगर आपको बुरे होने की स्वतन्त्रता ही न हो तो आपके भले होने का अर्थ क्या होगा? अगर आपको बेईमान होने की स्वतंत्रता ही न हो तो आपके ईमानदार होने का कोई अर्थ होता है? जब भी हम किसी व्यक्ति को कहते हैं कि वह ईमानदार है तो इसमें निहित है, 'इम्प्लाइड' है कि वह चाहता तो बेईमान हो सकता था, पर नहीं हुआ। अगर हो ही न सकता हो बेईमान, तो ईमानदारी दो

कौड़ी की हो जाती है। ईमानदारी का मूल्य बेईमान होने की क्षमता और संभावना में छिपा है। जीवन के शिखर छूने का मूल्य जीवन की अंधेरी घाटियों में उतरने की क्षमता में छिपा है। स्वर्ग पहुंच जाना इसीलिए संभव है कि नर्क की सीढ़ी भी हम पार कर सकते हैं। प्रकाश इसीलिए पाने की क्षमता है कि हम अंधेरे में भी हो सकते हैं। ध्यान रहे, अगर आत्मा के लिए बुरा होने का उपाय ही न हो तो आत्मा के भले होने में बिल्कुल ही नपुंसकता, इम्पोटेंसी हो जायेगी। विपरीत की सुविधा होनी चाहिए। और अगर चेतना को भी विपरीत की सुविधा नहीं है तो चेतना गुलाम है। और गुलाम चेतना का क्या अर्थ होता है ? उससे तो अचेतन होना, जड़ होना बेहतर है। यह जो हमारे भीतर छिपा हुआ परमात्मा है यह परम स्वतन्त्र है, 'एब्सल्यूट फ्रीडम' है। इसलिए शैतान होने का उपाय है, और परमात्मा होने की भी सुविधा है। एक छोर से दूसरे छोर तक हम कहीं भी हो सकते हैं। और जहां भी हम हैं वहां होना हमारी मजबूरी नहीं, हमारा निर्णय है—'अवर ओन डिसीजन'! अगर मजबूरी है तो बात खत्म हो गयी। अगर मैं पापी हूं और पापी होना मेरी मजबूरी है —पापी मुझे परमात्मा ने बनाया है या मैं पुण्यात्मा हूं और पुण्यात्मा मुझे परमात्मा ने बनाया है तो मैं पत्थर की तरह हो गया, मुझमें चेतना न रही। मैं एक बनायी हुई चीज हो गया, फिर मेरे कृत्य का कोई दायित्व मेरे ऊपर नहीं है।

एक मुसलमान मित्र मुझे मिलने आये थे, कुछ दिन हुए। बहुत समझदार व्यक्ति हैं। वह मुझसे कहने लगे कि मैं बहुत लोगों से मिला हूं, बहुत साधु संन्यासियों के पास गया हूं लेकिन कोई हिन्दू मुझे यह नहीं समझा सका कि आदमी पाप में क्यों गिरा? हिन्दू, जैन या बौद्ध, इस भूमि पर पैदा हुए तीनों धर्म यह मानते हैं कि अपने कर्मों के कारण। उस मुसलमान मित्र का पूछना बिल्कुल ठीक था। वह कहने लगे, अगर अपने कर्मों के कारण गिरा तो पहले जन्म में जब उसकी शुरूआत ही हुई होगी तब तो उसके पहले कोई कर्म नहीं थे। ठीक है, जब पहला ही जन्म हुआ होगा चेतना का तब तो वह निष्कपट, शुद्ध पैदा हुई होगी। उसके पहले तो कोई कर्म नहीं थे। इस जन्म में हम कहते हैं कि फलां आदमी बुरा है क्योंकि पिछले जन्म में बुरे कर्म किये। पिछले जन्म में बुरे कर्म किये क्योंकि और पिछले जन्म में बुरे कर्म किये। लेकिन कोई प्रथम जन्म तो मानना ही पड़ेगा। उस प्रथम जन्म के पहले तो कोई बुरे कर्म नहीं हुए, तो बुरे कर्म आ कैसे गये ? मैंने उन मुसलमान मित्र वे कहा कि यह बात बिल्कुल तर्कयुक्त है। लेकिन क्या इस्लाम और ईसाइयत जो उत्तर देते हैं उनपर आपने विचार किया ? उन्होंने कहा, वह ज्यादा ठीक मालूम पड़ता है कि ईश्वर ने आदमी को बनाया, जैसा चाहा वैसा बनाया। तो मैंने कहा, यही थोड़ी सी बात

समझनी है। इस देश में पैदा हुआ कोई भी धर्म जिम्मेदारी ईश्वर पर नहीं डालना चाहता, मनुष्य पर डालना चाहता है। यह मनुष्य की गरिमा की स्वीकृति है। "रिस्पोंसिबिलिटी इज ऑन मैन, नाट ऑन गॉड।" ध्यान रहे, गरिमा तभी है जब दायित्व हो। अगर दायित्व भी नहीं है – अगर मैं बुरा हूं तो परमात्मा ने बनाया, भला हूं तो परमात्मा ने बनाया, जैसा हूं परमात्मा ने बनाया तो सारी जिम्मेवारी परमात्मा की हो जाती है। और तब और भी उलझन खड़ी होगी कि परमात्मा को बुरा आदमी बनाने में क्या रस हो सकता है? और परमात्मा ही अगर बुरा बनाता है तो हमारी अच्छे बनने की कोशिश परमात्मा के खिलाफ पड़ती है। इसका अर्थ ये हुआ कि परमात्मा तो आदमी को बुरा बनाता है, और तथाकथित साधु संन्यासी आदमी को अच्छा बनाते हैं, यह तो बड़ी मुश्किल है। गुरुजिएफ कहा करता था कि दुनिया के सब महात्मा परमात्मा के खिलाफ मालूम पड़ते हैं, दुश्मन मालूम पड़ते हैं। वह आदमी को बुरा बनाता है या जैसा भी बनाता है, फिर आप कौन हैं सुधारने वाले? कर्म का सिद्धान्त कहता है, व्यक्ति पर जिम्मेदारी है लेकिन व्यक्ति पर जिम्मेदारी तभी हो सकती है जब व्यक्ति स्वतंत्र हो। स्वतंत्रता के साथ दायित्व है – "फ्रीडम इम्प्लाइज द रिस्पांसिबिलिटी।" अगर स्वतंत्रता नहीं है तो दायित्व बिल्कुल नहीं है। अगर स्वतंत्रता है तो दायित्व है। लेकिन स्वतंत्रता सब द्वयमुखी है। दोनों तरफ की स्वतंत्रता ही स्वतंत्रता होती है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने बेटे से कहा है––जब बेटा बड़ा हो गया, कि तिजोरी तेरी है, चाभी भर मेरे पास रहेगी। ऐसे तू जितना भी खर्च करना चाहे, खर्च कर सकता है लेकिन ताला भर मत खोलना। स्वतंत्रता पूरी दी जा रही मालूम पड़ती है, और जरा भी नहीं दी जाती।

मैंने एक मजाक सुना है कि जब पहली दफा फोर्ड ने कारें बनायीं अमरीका में, तो एक ही रंग की बनायीं, काले रंग की। और फोर्ड ने, अपनी फैक्टरी के दरवाजे पर एक वचन लिख छोड़ा था––'यू कैन चूज ऐनी कलर प्रोवाइडेड इट इज ब्लैक।' आप कोई भी रंग चुन सकते हैं, अगर वह काला है तो। काले रंग की कुल गाड़ियां ही थीं, कोई दूसरे रंग की तो गाड़ियां थीं नहीं। लेकिन स्वतंत्रता पूरी थी, आप कोई भी रंग चुन लें। बस, काला होना चाहिए। इतनी शर्त थी पीछे। अगर आदमी से परमात्मा यह कहे कि 'यू आर फ्री प्रोवाइडेड यू आर गुड' आप स्वतंत्र हैं, अगर आप अच्छे होना चाहते हैं तो ही। तो स्वतंत्रता दो कौड़ी की हो गयी। स्वतंत्रता का अर्थ ही यही होता है कि हम बुरे होने के लिए

भी स्वतंत्र हैं । और जब स्वतंत्रता हो तभी दायित्व है। तब फिर जिम्मा रामे है, अगर मैं बुरा हूं तो मै जिम्मेवार हूं । और अगर भला हूं तो मैं जिम्मेवार हो जाता हूं। जिम्मेवारी मुझ पर पड़ जाती है।

फिर भारत यह भी कहता है कि परमात्मा हमसे बाहर नहीं है। वह हमारे भीतर छिपा है। इसलिए हमारी स्वतंत्रता अन्ततः उसकी ही स्वतंत्रता है। इसे और समझ लेना चाहिए। क्योंकि परमात्मा अगर बाहर बैठा हो हमसे, और हमसे कहे कि 'आई गिव यू फ्रीडम', मै तुम्हें स्वतंत्रता देता हूं तो भी वह परतंत्रता हो जायेगी । क्योंकि किसी दूसरे के द्वारा दी गयी स्वतंत्रता कभी स्वतंत्रता नहीं है। क्योंकि वह किसी भी दिन 'कैंसिल' कर सकता है। वह किसी भी दिन कह देगा, अच्छा, बस अब बन्द। इरादा बदल दिया। अब स्वतंत्रता नहीं देते । तो हम क्या करेंगे ? नहीं, स्वतंत्रता अत्यांतिक है, अल्टीमेट है, क्योंकि देने वाला और लेने वाला दो नहीं हैं। हमारे ही भीतर बैठी हुई चेतना परम स्वतंत्र है क्योंकि वही परमात्मा है। वह जो अन्तरस्थ आकाश है वही परमात्मा है। और परमात्मा को भी अगर बुरे होने की सुविधा न हो तो वह परमात्मा की परतन्त्रता के अतिरिक्त और क्या घोषणा होगी ? इसलिए मन पैदा हो सकता है। वह हमारा पैदा किया हुआ है। वह परमात्मा का पैदा किया हुआ है ।

एक और बात ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि जीवन के प्रगाढ़ अनुभव के लिए विपरीत में उतर जाना अनिवार्य हो जाता है। प्रौढ़ता के लिए, म्योच्योरिटी के लिए, विपरीत में उतर जाना अनिवार्य होता है। जिसने दुख नहीं जाना वह सुख कभी जान नहीं पाता। जिसने अशांति नहीं जानी वह शांति भी कभी नहीं जान पाता, और जिसने संसार नहीं जाना वह स्वयं परमात्मा होते हुए भी परमात्मा को नहीं जान पाता। परमात्मा की पहचान के लिए संसार की यात्रा पर जाना अनिवार्य है। उससे कोई बचाव नहीं है। और जो जितना गहरा संसार में उतर जाता है उतना ही गहन परमात्मा के स्वरूप को अनुभव कर पाता है। उस उतरने का भी प्रयोजन है। कोई चीज जो हमारे पास सदा से हो, उसका हमें तब तक पता नहीं चलता, जबतक वह खो न जाय। खोने पर ही पता चलता है कि मेरे पास कुछ था, इसका अनुभव भी खोने पर होता है। खोना भी पाने की प्रक्रिया का हिस्सा है । खोना भी, ठीक से पाने का उपाय है। खोना भी पाने की क्रिया का अनिवार्य अंग है। हमारे बीच छिपा है, उसे अगर हमें ठीक ठीक अनुभव करना हो तो हमें उसे खोने की ही यात्रा पर जाना पड़ता है। कहते हैं लोग कि जब तक कोई परदेश नहीं जाता तब तक अपने

देश को नहीं पहचान पाता । वे ठीक कहते हैं। और कहते हैं लोग कि जब तक कोई दूसरों से परिचित नहीं होता तब तक अपने से परिचित नहीं हो पाता। "ईवन द वे टु वनसेल्फ पासेस थ्रू द अदर ।" सार्त्र का बहुत प्रसिद्ध वचन है कि दूसरे को जाने बिना स्वयं को जानने का कोई उपाय नहीं । दूसरे से गुजरना पड़ता है स्वयं की पहचान के लिए। क्यों ? क्योंकि जबतक विपरीत का अनुभव न हो तब तक अनुभव ही नहीं है। जैसे शिक्षक काले ब्लैक बोर्ड पर सफेद खड़िया से लिखता है, वैसे वह दीवाल पर भी लिख सकता है, लिखने में कोई अड़चन नहीं है। लेकिन तब दिखायी नहीं पड़ेगा। लिखा भी जायेगा और दिखायी भी नहीं पड़ेगा । लिखा तो जायेगा, पढ़ा नहीं जा सकेगा। और ऐसे लिखने का क्या प्रयोजन, जो पढ़ा न जा सके ?

सुना है मैंने, एक आदमी सुबह सुबह मुल्ला नसरुद्दीन के द्वार पर आया। गांव में अकेला ही पढ़ा लिखा आदमी था नसरुद्दीन और जहां एक ही आदमी पढ़ा लिखा हो तो समझ लेना चाहिए, पढ़ा लिखा कितना होगा। उस आदमी ने कहा, जरा एक चिट्ठी लिख दो मुल्ला । मुल्ला ने कहा, मेरे पैर में बहुत दर्द है, मैं न लिख सकूंगा। उस आदमी ने कहा—हद हो गयी। कभी हमने सुना नहीं कि लोग पैर से चिट्ठी लिखते हैं । हाथ से लिखो चिट्ठी, पैर में दर्द है तो पैर से क्या वास्ता ? हाथ में क्या अड़चन है ? नसरुद्दीन ने कहा, यह जरा रहस्य की बात है, यह न पूछो तो अच्छा। चिट्ठी हम न लिखेंगे, पैर में बहुत तकलीफ है। उस आदमी ने कहा, जरा रहस्य ही बता दें। बात क्या है, मेरी समझ में नहीं आती ? नसरुद्दीन ने कहा, बात यह है कि हमारी लिखी चिट्ठी हमारे सिवाय और कोई नहीं पढ़ पाता । फिर दूसरे गांव की यात्रा करने की अभी हमारी हैसियत नहीं । पैर में तकलीफ बहुत है, नसरुद्दीन ने कहा । जो पढ़ा ही न जा सके उसके लिखने का क्या फायदा ?

इसलिए काले ब्लैक बोर्ड पर लिखना पड़ता है। उस पर दिखायी पड़ता है। आकाश पर जब काले बादल होते हैं तो दिखायी पड़ती है बिजली कौंधती हुई। भीतर जो छिपा है परमात्मा उसके अनुभव के लिए पदार्थ की गहनता में उतरना अनिवार्य है। संन्यास को भी जानने के लिए गृहस्थ हुए बिना कोई मार्ग नहीं। सत्य को भी जानने के लिए असत्य के रास्तों से गुजरना पड़ता है। और इसकी जब कोई अनिवार्यता समझता है और इस रहस्य को समझ जाता है तो फिर जिस असत्य से गुजरा, उसके प्रति भी धन्यवाद मन में उठता है। क्योंकि उसके बिना सत्य तक नहीं पहुंचा जा सकता था। जिस

पाप से गुजर कर पुण्य तक पहुंचे उस पाप की भी अनुकम्पा ही मालूम होती है, क्योंकि उसके बिना पुण्य तक नहीं पहुंचा जा सकता था।

बोधिधर्म ने कहा है, और बोधिधर्म इस पृथ्वी पर दस पांच लोगों में एक है जिसने गहनतम सत्य के अनुभव को जाना। बोधिधर्म ने कहा है मरने के क्षण में, कि संसार, तेरा धन्यवाद। क्योंकि तेरे बिना निर्वाण को जानने का कोई उपाय नहीं। । शरीर, तुझे धन्यवाद, क्योंकि तेरे बिना आत्मा को पहचानने की सुविधा भी नहीं। सब पापों, तुम्हारी अनुकम्पा मुझ पर, क्योंकि तुमसे गुजर कर मैं पुण्य के शिखर तक पहुंचा। तुम सीढ़ियां थे। तब जीवन विपरीत रहकर भी विपरीत नहीं रह जाता। तब जीवन विपरीत होकर भी एक रस हो जाता है। और विपरीत में भी एक हार्मनी और एक संगीत उत्पन्न हो जाता है। संगीत पैदा होता है विभिन्न स्वरों से। और अगर संगीत के किसी स्वर को बहुत उभारना हो तो उसके पहले भी बहुत धीमे स्वर पैदा करने पड़ते हैं। तब उभरता है संगीत !

सब अभिव्यक्ति विपरीत के साथ है। इसलिए चेतना मन को पैदा करती है। यह चेतना का ही काम है। चेतना ही बाहर जाती है। और बाहर ही भटक भटक कर उसे पता चलता है कि बाहर कुछ नहीं है। तब चेतना भीतर वापस आती है। ध्यान रहे, जो चेतना कभी बाहर नहीं गयी उस चेतना में, और जो चेतना बाहर भटक कर भीतर आती है उस चेतना में, रिचनेस का, समृद्धि का बहुत फर्क है। इसलिए जब पापी कभी पुण्यात्मा होता है तो उसके पुण्य की जो गहराई होती है वह साधारण आदमी के पुण्य की गहराई नहीं होती, जो कभी पापी नहीं हुआ। क्योंकि पापी बहुत जानकर पुण्य तक पहुंचता है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, अच्छे आदमी की कोई जिन्दगी नहीं होती। अगर आप नाटककारों से पूछें, उपन्यासकारों से पूछें, फिल्म कथा लिखने वालों से पूछें तो वे कहेंगे कि अच्छे आदमी पर तो कोई कथा ही नहीं लिखी जा सकती। अगर आदमी बिल्कुल अच्छा हो तो कोरा सपाट होता है। रामायण में से राम को छोड़ने में बहुत असुविधा नहीं है, रावण को छोड़ने में सब कथा गड़बड़ हो जाती है। क्योंकि राम के बिना चल सकता है। रावण के बिना नहीं चल सकतां। कोई कितना ही कहे कि राम नायक हैं, जो कथा लिखना जानते हैं वे कहेंगे, रावण नायक है। क्योंकि सारी कथा उसके इर्दगिर्द घूमती है। और अगर राम भी प्रखर होकर प्रगट होते हैं तो रावण के सहारे, रावण के कन्धे

पर। रावण के बिना राम भी सफेद दीवार पर खींची गयी सफेद रेखा हो जायेंगे, काला ब्लैक बोर्ड तो रावण है। स्कूल में शिक्षक जब काले ब्लैक बोर्ड पर लिखता है तो बच्चे ब्लैक बोर्ड का विरोध नहीं करते। वे जानते हैं कि सफेद रेखा उसी पर उभरती है। लेकिन जब रावण के ब्लैक बोर्ड पर राम उभरते हैं तो हम नासमझ विरोध करते हैं कि रावण नहीं होना चाहिए। रावण दुनिया से मिटा दो। जिस दिन आप रावण को दुनिया से मिटा देंगे उस दिन राम भी तिरोहित हो जायेंगे – वह कहीं खोजे से नहीं मिलेंगे।

जीवन विपरीत स्वरों के बीच एक सामंजस्य है। चेतना ही पैदा करती है मन को। चेतना ही विचार को पैदा करती है। ताकि निर्विचार को जान सके। परमात्मा ही संसार को बनाता है, ताकि स्वयं को अनुभव कर सके। यह आत्म-अन्वेषण की यात्रा है। इसमें भटकना जरूरी है।

एक कहानी मैं निरन्तर कहता रहा हूं। एक गांव के बाहर उतरा एक आदमी अपने घोड़े से। झाड़ के पास बैठे नसरुद्दीन के सामने उसने हाथ में की झोली पटकी और कहा कि करोड़ों के हीरे जवाहरात इस झोली में हैं। इसे मैं लेकर घूम रहा हूं गांव गांव। मुझे कोई रत्ती भर भी सुख दे दे तो मैं यह सब हीरे उसे सौंप दूं। लेकिन अबतक मुझे कोई रती भर सुख नहीं दे पाया। नसरुद्दीन ने पूछा, तुम बहुत दुखी हो? उसने कहा, मुझसे ज्यादा दुखी कोई नहीं हो सकता। तभी तो मैं रत्ती भर सुख के लिए करोड़ों के हीरे देने को तैयार हूं। नसरुद्दीन ने कहा, तुम ठीक जगह आ गये हो। बैठो। वह जब तक बैठा तबतक नसरुद्दीन उसकी थैली लेकर भाग खड़ा हुआ। वह आदमी स्वभावतः नसरुद्दीन के पीछे भागा कि मैं मर गया, मैं मर गया! यह आदमी डाकू है, यह लुटेरा है! गांव के गली कूचे नसरुद्दीन के परिचित थे। उसने काफी चक्कर खिलाये। पूरा गांव जग गया। सारा गांव दौड़ने लगा। करोड़ों का मामला था। नसरुद्दीन आगे और वह धनपति पीछे छाती पीटता हुआ जोर जोर चिल्ला रहा है कि मेरी जिन्दगी भर की कमाई वही है। मैं सुख खोजने निकला हूं और यह दुष्ट मुझे और दुख दिये दे रहा है। भाग कर नसरुद्दीन उसी झाड़ के पास पहुंच गया जहां उसका घोड़ा खड़ां था। उसने झोला घोड़े के पास रख दिया और झाड़ के पीछे खड़ा हो गया। दो क्षण बाद अमीर भी भागा हुआ पहुंचा, अमीर ने झोला पड़ा हुआ देखा, उठाकर छाती से लगा लिया और कहा, हे परमात्मा! तेरा बड़ा धन्यवाद है। नसरुद्दीन ने झाड़ के पीछे से पूछा कुछ सुख मिला? पाने के लिए खोना जरूरी है। उस आदमी

ने कहा, कुछ ? कुछ नहीं, बहुत मिला। इतना सुख मैंने जीवन में जाना ही नहीं। नसरुद्दीन ने कहा, अब तू जा, नहीं तो इससे ज्यादा अगर मैं सुख दूंगा तो तू मुसीबत में पड़ सकता है।

बहुत बार खोना बहुत जरूरी है। सवाल यह नहीं है कि हमने क्यों अपने को खोया ? असली सवाल यह है कि या तो हमने पूरा अपने को नहीं खोया, या हम खोने के इतने अभ्यासी हो गये कि लौटने के सब रास्ते टूट गये मालूम पड़ते हैं। खोना अनिवार्य है। पर सवाल यह है कि कब तक हम खोये रहेंगे ? इसलिए बुद्ध से अगर कोई पूछता था कि यह आदमी अन्धकार में क्यों गिरा ? तो बुद्ध कहते, व्यर्थ की बातें मत करो। अगर पूछना हो तो यह पूछो कि अन्धकार के बाहर कैसे जाया जा सकता है ? यह सवाल संगत है, दूसरा असंगत है। बेकार की बातचीत में मुझे मत खींचो कि यह आदमी अन्धकार में क्यों गिरा ? वह तुम बाद में खोज लेना। अभी तुम मुझसे यह पूछ लो कि प्रकाश कैसे मिल सकता है ? बुद्ध कहते कि तुम उस आदमी जैसे हो जिसकी छाती में जहरीला तीर घुसा हो। मैं उसकी छाती से तीर खींचने लगूं तो वह आदमी कहे कि रुको, पहले यह बताओ कि यह तीर किसने मारा ? पहले यह बताओ कि यह तीर पूरब से आया कि पश्चिम से ? पहले यह बताओ कि यह तीर जहर बुझा है या साधारण है ? बुद्ध कहते, मैं उस आदमी से कहता कि यह सब तुम पीछे पता लगा लेना, अभी मैं तीर को खींचकर बाहर निकाले दे रहा हूं। लेकिन वह आदमी कहता है कि जब तक जानकारी पूरी न हो तब तक कुछ भी करना क्या उचित है ?

यह फिक्र मत करें कि मन कैसे पैदा हुआ ? यह फिक्र करें कि मन कैसे विसर्जित हो सकता है। और ध्यान रहे, बिना विसर्जन किये आपको कभी पता न चलेगा कि कैसे इसका सर्जन किया। उसके कारण हैं। क्योंकि सर्जन किये अनंत काल बीत गया। इस स्मृति को खोजना आज आपके लिए आसान नहीं होगा। उसका भी रास्ता है। अगर आप लौटें अपने पिछले जन्मों में। लौटते जायं। लौटते जायं। आदमी के जन्म चुक जायेंगे। पशुओं के जन्म होंगे, पशुओं के जन्म चुक जायेंगे। कीड़े मकोड़ों के जन्म होंगे, कीड़े मकोड़ों के जन्म चुक जायेंगे। पौधों के जन्म होंगे, पौधों के जन्म चुक जायेंगे। पत्थरों के जन्म होंगे। लौटते जायं उस जगह जहां पहले दिन आपकी चेतना सक्रिय हुई और मन का निर्माण शुरू हुआ। लेकिन वह बड़ी लम्बी यात्रा है। उसमें मत पड़ें कि यह मन कैसे बना ? हां, लेकिन एक सरल उपाय है कि इस मन को विसर्जित करें। और विसर्जन को आप अभी देख सकते हैं। जब आप विसर्जन को देख लेंगे तो आप

जान जायेंगे कि विसर्जन की जो प्रक्रिया है उससे उल्टी प्रक्रिया सर्जन की है।

बुद्ध एक दिन अपने भिक्षुओं के बीच सुबह जब बोलने गये तो उनके हाथ में एक रेशम का रूमाल था। बैठकर उन्होंने उसपर पांच गांठें लगायीं ! भिक्षु बड़े चिन्तित हुए क्योंकि बुद्ध कभी कुछ लेकर हाथ में आते न थे। रेशम का रूमाल क्यों ले आये और फिर बोलने की जगह बैठकर उसपर गांठें लगाने लगे। बड़ी उत्सुकता, बड़ी आतुरता हो गयी। क्या कोई जादू दिखाने का ख्याल है ? क्योंकि जादूगर रूमाल वगैरह लेकर आते हैं। लेकिन बुद्ध ने शांति से, सन्नाटे में रूमाल में पांच गांठें लगा लीं और फिर बोले –भिक्षुओ, इस रूमाल में गांठें लग गयीं। मैं तुमसे दो सवाल पूछना चाहता हूं। एक तो यह कि जब रूमाल में गांठें नहीं लगी थीं तब के रूमाल में, और जब रूमाल में गांठें लग गयी हैं, अब के रूमाल में क्या कोई फर्क है, स्वरूपगत? एक भिक्षु ने कहा, स्वरूपगत तो फर्क बिल्कुल नहीं है, रूमाल वही है। जरा भी, इंच भर भी रूमाल के स्वरूप में फर्क नहीं है लेकिन आप हमें फंसाने की कोशिश कर रहे हैं। फर्क हो गया क्योंकि तब रूमाल में गांठें न थीं और अब गांठें हैं। लेकिन यह फर्क बहुत ऊपरी है, क्योंकि गांठें रूमाल के स्वभाव पर नहीं लगतीं, केवल शरीर पर लगती हैं।

संसार और निर्वाण में इतना ही फर्क है। निर्वाण में भी वही स्वरूप होता है जो संसार में है। सिर्फ संसार में रूमाल पर पांच गांठें हैं। बुद्ध ने कहा कि भिक्षुओ, यह जो रूमाल है गांठ लगा हुआ, ऐसे ही तुम हो। तुममें और मुझमें बहुत फर्क नहीं। स्वरूप एक जैसा है। सिर्फ तुम पर कुछ गांठें लगी हैं। बुद्ध ने कहा, इन गांठों को मैं खोलना चाहता हूं। और उस रूमाल को पकड़कर बुद्ध ने खींचा। स्वभावतः खींचने से गांठें और मजबूत हो गयीं। एक भिक्षु ने कहा, आप जो कर रहे हैं, इससे गांठें खुलेंगी नहीं, खूलना मुश्किल हो जायेगा। बुद्ध ने कहा, तो इसका यह अर्थ हुआ कि जब तक गांठों को ठीक से न समझ लिया जाय तब तक खींचना खतरनाक है। हम सब गांठों को खींच रहे हैं बिना समझे, कि गांठ कैसे लगी है ? एक भिक्षु से बुद्ध ने पूछा, तो मैं क्या करूं ? उस भिक्षु ने कहा, जानना जरूरी है कि गांठ कैसे लगी ? गांठ खोली जा सकती है, क्योंकि लगने का जो ढंग है उससे विपरीत खुलने का ढंग होगा। बुद्ध ने कहा, गांठें अभी लगी हैं इसलिए तुम्हारे ख्याल में है कि कैसे लगीं, लेकिन गांठें अगर बहुत काल पहले लगी होतीं तो तुम कैसे पता लगाते कि गांठें कैसे लगीं ? उस भिक्षु ने कहा, तब तो हम खोलकर ही पता लगाते। खोलने से पता लग जायेगा। क्योंकि खोलने का जो ढंग है उसका उल्टा ढंग लगने का होगा। तो आप इस फिक्र में न पड़ें कि यह मन कैसे पैदा हुआ ? आप इस फिक्र में पड़ें कि यह मन

कैसे चला जाय ? और जिस क्षण चला जायगा उस दिन आप जानेंगे, उसी क्षण कि कैसे पैदा हुआ था ? जो विसर्जन करता है वही सर्जन करने वाला है और जो विसर्जन कर सकता है वह सर्जन भी कर सकता था। विसर्जन की जो प्रक्रिया है, उससे उल्टी प्रक्रिया सर्जन की है।

भीतर का जो आकाश है वह बादल रहित, मेघ रहित, विचार रहित, मन रहित है। बाहर के आकाश का तभी पता चलता है जब आकाश में बादल घिर जाते हैं पर तब बादलों का पता चलता है, आकाश का पता नहीं चलता। हालांकि आकाश मिट नहीं गया होता। सदा बादलों के पीछे खड़ा रहता है। और बादल भी आकाश में ही होते हैं, आकाश के बिना नहीं हो सकते। इसी भांति विचारों से, मन से घिरे हुए भीतर के आकाश का भी पता नहीं चलता।

ह्यूम ने कहा है ये बातें सुनकर कि भीतर भी कोई है, मैं बहुत बार खोजने गया; लेकिन जब भी भीतर गया तो मुझे कोई आत्मा न मिली, कोई परमात्मा न मिला। या तो कभी कोई विचार मिला, कोई वासना मिली, कोई वृत्ति मिली, या कोई राग मिला; लेकिन आत्मा कभी भी न मिली। वह ठीक कहता है। अगर आप अपने हवाई जहाज को उड़ायें, या अपने पंखों को फैलायें आकाश की तरफ और बदलियां आपको मिलें और बदलियों को ही खोज करके आप वापस लौट आयें, बदलियों को पार न करें, तो लौटकर आप भी कहेंगे, कोई आकाश भी न मिला। बदलियां ही बदलियां थीं, धुआं ही धुआं था, बादल ही बादल थे, कहीं कोई आकाश न था। अपने भीतर भी हम सिर्फ बदलियों तक जाकर लौट आते हैं। उनके पार प्रवेश नहीं हो पाता। पार जाने की उड़ान ऐसी ही है—जैसे आप कभी हवाई जहाज पर उड़े हों, बादलों के पार और ऊपर, और जब बादल नीचे छूट जाते हैं। वैसे ही ध्यान में भी एक उड़ान होती है जब विचार नीचे छूट जाते हैं और आप ऊपर हो जाते हैं। तब खुला आकाश मिलता है ! तब अन्तर-आकाश से परिचय होता है !! तब सर्जन-विसर्जन के सारे भेद को आप जान पाते हैं !!!

जो बोएंगे बीज वही काटेंगे फसल

किसे हम कहें कि अपना मित्र है और किसे हम कहें कि अपना शत्रु है। एक छोटी सी परिभाषा निर्मित की जा सकती है। हम ऐसा कुछ भी करते हों, जिससे दुख फलित होता है तो हम अपने मित्र नहीं कहे जा सकते। स्वयं के लिए दुख के बीज बोने वाला व्यक्ति अपना शत्रु है। और हम सब स्वयं के लिए दुख का बीज बोते हैं। निश्चित ही बीज बोने में और फसल काटने में बहुत वक्त लग जाता है, इसलिए हमें याद भी नहीं रहता कि हम अपने ही बीजों के साथ

की गयी मेहनत की फसल काट रहे हैं। अक्सर फासला इतना हो जाता है कि हम सोचते हैं, बीज तो हमने बोये थे अमृत के, न मालूम कैसा दुर्भाग्य–कि फल जहर के और विष के उपलब्ध हुए हैं। लेकिन इस जगत में जो हम बोते हैं उसके अतिरिक्त हमें कुछ भी न मिलता है, न मिलने का कोई उपाय है। हम वही पाते हैं, जो हम अपने को निर्मित करते हैं। हम वही पाते हैं, जिसकी हम तैयारी करते हैं। हम वहीं पहुंचते हैं जहां की हम यात्रा करते हैं। हम वहां नहीं पहुंचते जहां की हमने यात्रा ही न की हो। यद्यपि हो सकता है, यात्रा करते समय हमने अपने मन में कल्पना की मंजिल कोई और बनायी हो। रास्ते को कोई इससे प्रयोजन नहीं है। मैं नदी की तरफ नहीं जा रहा हूं। मन में सोचता हूं कि नदी की तरफ जा रहा हूं, लेकिन बाजार की तरफ जाने वाले रास्ते पर चलूंगा तो मैं कितना ही सोचूं कि मैं नदी की तरफ जा रहा हूं, मैं पहुंचूंगा बाजार ही। सोचने से नहीं पहुंचता है आदमी। किन रास्तों पर चलता है उनसे पहुंचता है। मंजिलें मन में तय नहीं होतीं, रास्ते पर तय होती हैं। आप कोई भी सपना देखते रहें, अगर बीज आपने नीम के बो दिये हैं तो सपने आप शायद ले रहे हों कि कोई स्वादिष्ट मधुर फल लगेंगे – आपके सपनों से फल नहीं निकलते। फल आपके बोये बीजों से निकलते हैं। इसलिए आखिर में जब नीम के कड़वे फल हाथ में आते हैं तो शायद आप दुखी होते हैं, पछताते हैं और सोचते हैं कि मैंने तो बीज बोये थे अमृत के, फल कड़वे कैसे आये? ध्यान रहे, फल ही कसौटी है और परीक्षा है बीज की। फल ही बताता है कि बीज आपने कैसे बोये थे? आपने कल्पना क्या की थी उससे बीजों को कोई प्रयोजन नहीं है।

हम सभी आनन्द लाना चाहते हैं जीवन में लेकिन आता कहां है आनन्द? हम सभी शांति चाहते हैं जीवन में, लेकिन मिलती कहां है शान्ति! हम सभी चाहते हैं कि सुख, महासुख ही बरसे, पर बरसता कभी नहीं। तो इस सम्बन्ध में एक बात इस सूत्र से समझ लेनी जरूरी है कि हमारी चाह से नहीं आते फल। हम जो बोते हैं उससे आते हैं। हम चाहते कुछ हैं, बोते कुछ हैं। हम बोते जहर हैं और चाहते अमृत हैं। इसलिए जब फल आते हैं तो जहर के ही आते हैं, दुख और पीड़ा के ही आते हैं। नर्क ही फलित होता है। हम सब अपने जीवन को देखें तो ख्याल में आ सकता है। जीवन भर चलकर हम सिवाय दुख के गड्ढों के और कहीं भी पहुंचते नहीं मालूम पड़ते हैं। रोज दुख घना होता चला जाता है। रोज रात कटती नहीं, और बड़ी होती चली जाती है। रोज मन पर संताप के कांटे फैलते चले जाते हैं और फूल आनन्द के कहीं खिलते हुए मालूम नहीं पड़ते। पैरों में पत्थर बंध जाते

हैं दुख के। पैर नृत्य नहीं कर पाते हैं उस खुशी में, जिस खुशी की हम तलाश में हैं। क्योंकि कहीं न कहीं हम, हम ही– (क्यों कि और कोई नहीं है)–कुछ गलत बो लेते हैं। उस गलत बोने में ही हम अपने शत्रु सिद्ध होते हैं।

बहुत हैरानी की बात है, एक आदमी क्रोध के बीज बोये और शांति पाना चाहे! एक आदमी घृणा के बीज बोये और प्रेम की फसल काटना चाहे! आदमी चारों तरफ शत्रुता फैलाये और चाहे कि सारे लोग उसके मित्र हो जायें! एक आदमी सबकी तरफ गालियां फेंके और चाहे कि शुभाशीष सारे आकाश से उसके ऊपर बरसने लगे! यह असंभव है। पर आदमी ऐसी ही असंभव चाह करता है। "द इम्पोसिबल डिजायर"। मैं गाली दूं और दूसरा मुझे आदर दे जाय, ऐसी असंभव कामना हमारे मन में चलती है। मैं दूसरे को घृणा करूं और दूसरे मुझे प्रेम कर जायं। मैं किसी पर भरोसा न करूं और सब मुझपर भरोसा कर लें। मैं सबको धोखा दूं और मुझे कोई धोखा न दे। मैं सबको दुख पहुंचाऊं, लेकिन मुझे कोई दुख न पहुंचाये। जो हम बोयेंगे, वही हम पर लौटने लगेगा। जीवन का सूत्र ही यह है कि जो हम फेंकते हैं वही हम पर वापस लौट आता है।

चारों ओर हमारी ही फेंकी हुई ध्वनियां प्रतिध्वनित होकर हमें मिल जाती हैं। थोड़ी देर अवश्य लगती है। ध्वनि टकराती है बाहर की दिशाओं से, और लौट आती है। जब तक लौटती है, तब तक हमें खयाल भी नहीं रह जाता कि हमने जो गाली फेंकी थी वही वापस लौट रही है। बुद्ध का एक शिष्य एक रास्ते से गुजर रहा है। उसके साथ दस पन्द्रह संन्यासी हैं। जोर से पैर में उसके पत्थर लग जाता है रास्ते पर। खून बहने लगता है। शिष्य आकाश को तरफ हाथ जोड़कर किसी आनन्द भाव में लीन हो जाता है। उसके साथी वे पन्द्रह भिक्षु हैरानी में खड़े रह जाते हैं! शिष्य जब अपने ध्यान से वापस लौटता है तब उससे पूछते हैं कि आप क्या कर रहे थे! पैर में चोट लगी, पत्थर लगा, खून बहा और आप कुछ इस प्रकार हाथ जोड़े हुए थे जैसे किसी को धन्यवाद दे रहे हों। शिष्य ने कहा, बस यह एक मेरा विष का बीज और बाकी रह गया था। मारा था किसी को पत्थर कभी, आज उससे छुटकारा हो गया। आज नमस्कार करके धन्यवाद दे दिया है प्रभु को, कि अब मेरे बोये हुए बीज कुछ भी न बचे। यह आखिरी फसल समाप्त हो गयी। लेकिन अगर आपको रास्ते पर चलते वक्त पत्थर पैर में लग जाय तो इसकी बहुत कम संभावना है कि आप ऐसा सोचें कि किसी बोये हुए बीज का फल हो सकता है। ऐसा नहीं सोच पायेंगे। संभावना यही है कि रास्ते पर पड़े हुए पत्थर को भी आप एक गाली जरूर देंगे। पत्थर को भी गाली, और कभी

ख्याल भी न करेंगे कि पत्थर को दी गयी गाली, फिर बीज बो रहे हैं आप ! पत्थर को दी हुई गाली भी बीज बनेगी । सवाल यह नहीं है कि किसको गाली दी । सवाल यह है कि आपने गाली दी, वह वापस लौटेगी ।

सुना है मैंने कि गांव का साधारण ग्रामीण किसान बैलों को गाली देने में बहुत ही कुशल है, अपनी बैलगाड़ी में जोत कर । जीसस निकलते हैं गांव के रास्ते से । वह आदमी अपने बैलों को बेहूदी गालियां दे रहा है । बड़े आंतरिक सम्बन्ध बना रहा है गालियों से । जीसस उसे रोकते हैं और कहते हैं, पागल, तू यह क्या कर रहा है ? वह आदमी कहता है कि कोई बैल मुझे गाली वापस तो नहीं लौटा देंगे मेरा क्या बिगड़ेगा ! वह आदमी ठीक कहता है । हमारा गणित बिल्कुल ऐसा ही है । जो आदमी गाली वापस नहीं लौटा सकता उसे गाली देने में हर्ज क्या है । इसलिए अपने से कमजोर को देखकर हम सब गाली देते हैं । हम बेवक्त गाली देते हैं, जब कोई जरूरत भी न हो । कमजोर दिखा कि हमारा दिल मचलता है कि थोड़ा इसको सता लो । जीसस ने कहा, बैलों को गाली तू दे रहा है, अगर वे गाली लौटा सकते तो कम खतरा था, क्योंकि निपटारा अभी हो जाता । लेकिन चूंकि वे गाली नहीं लौटा सकते, लेकिन गाली तो लौटेगी । तू महंगे सौदे में पड़ेगा । यह गाली देना छोड़ । जीसस की तरफ उस आदमी ने देखा, जीसस की आंखों को देखा, उसके आनंद को, उनकी शांति को देखा । उसने उनके पैर छुए और कहा कि मैं कसम लेता हूं, इन-बैलों को गाली नहीं दूंगा । जीसस दूसरे गांव चले गये । दो चार दिन आदमी ने बड़ी मेहनत से अपने को रोका, लेकिन कसमों से दुनिया में कोई रुकावटें नहीं होतीं । रुकावट होती है, समझ से ! दो चार दिन में प्रभाव क्षीण हुआ । वह आदमी अपनी जगह वापस लौट आया । उसने कहा, छोड़ो भी, ऐसे तो हम मुसीबत में पड़ जायेंगे । बैलगाड़ी से आना मुश्किल हो गया । हिसाब बैलगाड़ी चलाने का रखें कि गाली न देने का रखें । बैलों को जोतें कि अपने को जोते रहें । बैलों को सम्हालें कि खुद को सम्हालें । यह तो एक मुसीबत हो गयी । गाली उसने वापस देनी शुरू कर दी । चार दिन जितनी रोकी थी उतनी एक दिन में निकाल ली । रफादफा हुआ, मामला हल्का हुआ, मन उसका शांत हुआ । कोई तीन चार महीने बाद जीसस उस गांव से वापस निकल रहे थे । उसको पता भी नहीं था कि यह आदमी फिर मिल जायेगा रास्ते में । वह धुंआंधार गालियां दे रहा है बैलों को । जीसस ने खड़े होकर कहा—ये क्या है मेरे भाई ? उसने देखा जीसस को और फौरन बात बदली । उसने कहा बैलों से—देखो बैल, यह मैंने तुम्हें गालियां दीं, ऐसी मैं तुम्हें पहले दिया करता था । अब मेरे प्यारे बेटो, जरा तेजी से चलो । जीसस ने कहा—तू बैलों को ही धोखा नहीं

दे रहा है, तू मुझे भी धोखा दे रहा है। और तू मुझे धोखा दे इससे बहुत हर्जा नहीं है, तू अपने को धोखा दे रहा है। अंतिम धोखा तो खुद पर ही गिर जाता है। जीसस ने कहा–हो सकता है मैं दुबारा इस गांव फिर कभी न आऊं। मैं मान ही ले रहा हूं कि तू बैलों को गालियां नहीं दे रहा था, सिर्फ पुरानी गालियां बैलों को याद दिला रहा था। लेकिन किसलिए याद दिला रहा था ? तू मुझे धोखा दे कि तू बैलों को धोखा दे—इसका बहुत अर्थ नहीं है, लेकिन तू अपने को ही धोखा दे रहा है।

जीवन में जब भी हम कुछ बुरा कर रहे हैं तो हम किसी दूसरे के साथ कर रहे हैं यह भ्रांति है आपकी। प्राथमिक रूप से हम अपने ही साथ कर रहे हैं। क्योंकि अंतिम फल हमें भोगने हैं। वह जो भी हम बो रहे हैं, उसकी फसल हमें काटनी है। इंच इंच का हिसाब है। इस जगत में कुछ भी बेहिसाब नहीं जाता है। हम अपने शत्रु हो जाते हैं। हम कुछ ऐसा करते हैं जिससे हम अपने को ही दुख में डालते हैं, अपने ही दुख में उतरने की सीढ़ियां निर्मित करते हैं। तो ठीक से देख लेना, जो आदमी अपना शत्रु है, वही आदमी अधार्मिक है। और जो अपना शत्रु है वह किसी का मित्र तो कैसे हो सकेगा ? जो अपना भी मित्र नहीं, जो अपने लिए ही दुख के आधार बना रहा है वह सबके लिए दुख के आधार बना देगा।

पहला पाप अपने साथ शत्रुता है। फिर उसका फैलाव होता है। फिर अपने निकटतम लोगों के साथ शत्रुता बनती है, फिर दूरतम लोगों के साथ। फिर जहर फैलता चला जाता है। हमें पता भी नहीं चलता - जैसे कि झील में, कोई शांत झील में पत्थर फेंक दे। चोट पड़ते ही पत्थर तो नीचे बैठ जाता है क्षण भर में, लेकिन झील की सतह पर उठी हुई लहरें दूर दूर तक यात्रा पर निकल जाती हैं। लहरें चलती चली जाती हैं अनन्त तक। ऐसे ही हम जो करते हैं– हम तो करके चुक भी जाते हैं। आपने गाली दे दी, बात खत्म हो गयी। फिर आप गीता पढ़ने लगे या कुछ भी करने लगे, लेकिन उस गाली की जो 'रिपिल्स', जो तरंगें पैदा हुई वह चल पड़ीं। वह न मालूम कितने दूर के छोरों को छुयेंगी ! और जितना अहित उस गाली से होगा उतने सारे अहित के लिए आप जिम्मेवार हो गये। आप कहेंगे कितना अहित हो सकता है एक गाली से ? मैं कहता हूं अकल्पनीय अहित हो सकता है। और जितना अहित हो जायेगा इस विश्व के तंत्र में, उतने के लिए आप जिम्मेदार हो जायेंगे। और कौन जिम्मेवार होगा ? आपने उठायीं वे लहरें। आपने ही बोया वह बीज। अब वह चल पड़ा। अब वह दूर दूर तक फैल जायेगा। एक छोटी सी दी हुई गाली से क्या क्या हो सकता है ! अगर आपने अकेले में गाली दी हो और किसी ने न सुनी हो तब तो शायद आप सोचेंगे कि कुछ भी नहीं होगा इसका परिणाम।

लेकिन इस जगत में कोई भी घटना निष्परिणामी नहीं है। उसके परिणाम होंगे ही। आप बहुत सूक्ष्म तरंग पैदा करते हैं अपने चारों ओर। वे तरंगें फैलती हैं। उन तरंगों के प्रभाव में जो लोग भी आयेंगे वे गलत रास्ते पर धक्का खायेंगे।

अभी बहुत काम चलता है सूक्ष्मतम तरंगों पर, और ख्याल में आता है कि अगर गलत लोग एक जगह इकट्ठे हों, सिर्फ चुपचाप बैठे हों, कुछ भी नहीं कर रहे हों, सिर्फ गलत हों और आप उनके पास से गुजर जायं तो आपके भीतर जो गलत हिस्सा है वह ऊपर आ जाता है। और जो ठीक हिस्सा है वह नीचे दब जाता है। दोनों हिस्से आपके भीतर हैं। अगर कुछ अच्छे लोग बैठे हों एक जगह, प्रभु का स्मरण करते हों, कि प्रभु का गीत गाते हों, कि किसी सद्भावों के फूलों की सुगन्ध में जीते हों, कि सिर्फ मौन ही बैठे हों। जब आप इन लोगों के पास से गुजरते हैं तो दूसरी घटना घटती है। आपका गलत हिस्सा नीचे दब जाता है, आपका श्रेष्ठ हिस्सा ऊपर आ जाता है। आपकी संभावनाओं में इतने सूक्ष्मतम अन्तर होते हैं कि हिसाब लगाना मुश्किल है। और हम चौबीस घण्टे कुछ न कुछ कर रहे हैं। एक छोटा सा गलत बोला गया शब्द कितनी दूर तक कांटों को बो जायेगा, हमें कुछ पता नहीं है।

बुद्ध अपने भिक्षुओं से कहते थे कि तुम चौबीस घण्टे, राह पर कोई दिखे तो उसकी मंगल की कामना करना। वृक्ष भी मिल जाय तो उसकी मंगल की कामना करके उसके पास से गुजरना। पहाड़ भी दिख जाय तो मंगल की कामना करके उसके निकट से गुजरना। राहगीर दिख जाय अनजान, तो उसके पास से मंगल की कामना करके राह से गुजरना। एक भिक्षु ने पूछा, इससे क्या फायदा ? बुद्ध ने कहा, इसके दो फायदे हैं। पहला तो यह कि तुम्हें गाली देने का अवसर न मिलेगा। तुम्हें बुरा ख्याल करने का अवसर न मिलेगा। तुम्हारी शक्ति नियोजित हो जायेगी मंगल की दिशा में। और दूसरा फायदा यह कि जब तुम किसी के लिए मंगल की कामना करते हो तो तुम उसके भीतर भी रिजोनेंस, प्रतिध्वनि पैदा करते हो। वह भी तुम्हारे लिए मंगल की कामना से भर जाता है। इसलिये इस मुल्क में राह पर चलते हुए अनजान आदमी को भी 'राम राम' कहने की प्रक्रिया बनायी थी, जो शायद दुनिया में कहीं नहीं बनायी जा सकी।

उस आदमी को देखकर हमने प्रभु का स्मरण किया। जो ठीक से नमस्कार करना जानते हैं वह सिर्फ उच्चारण नहीं करेंगे, वह उस आदमी में राम की प्रतिमा को भी देखकर गुजर जायेंगे। उन्होंने उस आदमी को देखकर प्रभु का स्मरण किया। उस आदमी की मौजूदगी प्रभु के स्मरण की घटना बन गयी। इस मौके को छोड़ा नहीं, इस मौके पर एक शुभ कामना पैदा की गयी। प्रभु के स्मरण की घड़ी

पैदा की गयी । और हो सकता है, वह आदमी शायद राम को मानता भी न हो और जानता भी न हो लेकिन उत्तर में वह भी कहेगा–'राम राम' । उसके भीतर भी कुछ ऊपर आयेगा । और अगर पुराने गांव की राह से गुजरें तो राह में पच्चीस दफा राम राम कर लेना पड़ता है । जीवन बहुत छोटी छोटी घटनाओं से निर्मित होता है । मंगल की कामना या प्रभु का स्मरण आपके भीतर जो श्रेष्ठ है उसको ऊपर लाता है । और दूसरे के भीतर जो श्रेष्ठ है उसे भी ऊपर लाता है । जब आप किसी के सामने दोनों हाथ जोड़कर सिर झुका देते हैं तो आप उसको भी झुकने का एक अवसर देते हैं । और झुकने से बड़ा अवसर इस जगत में दूसरा नहीं है क्योंकि झुका हुआ सिर कुछ बुरा नहीं सोच पाता । झुका हुआ सिर गाली नहीं दे पाता । गाली देने के लिए अकड़ा हुआ सिर चाहिए । और कभी आपने ख्याल किया हो या न किया हो, लेकिन अब आप ख्याल करना कि जब किसी को हृदयपूर्वक नमस्कार करके सिर झुकायें, और अगर कल्पना भी कर सकें कि परमात्मा दूसरी तरफ है तो आप अपने में भी फर्क पायेंगे और उस आदमी में भी फर्क पायेंगे । वह आदमी आपके पास से गुजरा तो आपने उस के लिये पारस का काम किया, उसके भीतर कुछ आपने सोना बना दिया । और जब आप किसी के लिए पारस का काम करते हैं तो दूसरा भी आपके लिए पारस बन जाता है । जीवन सम्बन्ध, है, रिलेशनशिप है । हम संबंधों में जीते हैं । हम अपने चारों तरफ अगर पारस का काम करते हैं तो यह असंभव है कि बाकी लोग हमारे लिए पारस न हो जायं । वे भी हो जाते हैं ।

अपना मित्र वही है जो अपने चारों ओर मंगल का फैलाव करता है, अपने चारों ओर शुभ की कामना करता है । जो अपने चारों ओर नमन से भरा हुआ है, अपने चारों ओर कृतज्ञता का ज्ञापन करता चलता है । और जो व्यक्ति दूसरों के लिए मंगल से भरा हो वह अपने लिए अमंगल से कैसे भर सकता है ? जो दूसरों के लिए भी सुख की कामना से भरा हो वह अपने लिए दुख की कामना से नहीं भर सकता । वह अपना मित्र हो जाता है । और अपना मित्र हो जाना बहुत बड़ी घटना है । जो अपना मित्र हो गया वह धार्मिक हो गया । अब वह ऐसा कोई भी काम नहीं कर सकता जिससे स्वयं को दुख मिले । तो अपना हिसाब रख लेना चाहिए कि मैं ऐसे कौन कौन से काम करता हूं जिससे मैं ही दुख पाता हूं । दिन में हम हजार काम कर रहे हैं, जिनसे हम दुख पाते हैं । हजार बार पा चुके हैं । लेकिन कभी हम ठीक से तर्क नहीं समझ पाते हैं जीवन का, कि हम इन कामों को करके दुख पाते हैं । वही बात जो आपको हजार बार मुश्किल में डाल चुकी है, आप फिर कह देते हैं । वही व्यवहार जो आपको हजार बार पीड़ा में धक्के दे चुका है, आप

फिर कर गुजरते हैं। वही सब दोहराये चले जाते हैं यंत्र की भांति। जिन्दगी एक पुनरुक्ति से ज्यादा नहीं मालूम पड़ती जैसी हम जीते हैं–एक 'मेकेनिकल रेपीटीशन'। वही भूलें, वही चूकें ! नयी भूलें करने वाले आविष्कारी आदमी भी बहुत कम हैं, बस पुरानी भूलें ही हम किये चले जाते हैं। इतनी बुद्धि भी नहीं कि एकाध नयी भूल करें। पुराना––कल किया था वही, परसों भी किया था वही। आज फिर वही करेंगे, कल फिर वही करेंगे। मैं चाहूंगा कि आप इसके प्रति सजग होंगे। अपनी शत्रुता के प्रति सजग होंगे तो अपनी मित्रता का आधार बनना शुरू होगा। कृष्ण या बुद्ध या महावीर या क्राइस्ट जैसे लोग अपने लिए, अपने लिए ही, इतने आनन्द का रास्ता बनाते हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। ऊपर से हमें लगता है कि ये लोग बिल्कुल त्यागी हैं, लेकिन मैं आपसे कहता हूं, इनसे ज्यादा परम स्वार्थी और कोई भी नहीं है ! हम त्यागी कहे जा सकते हैं क्योंकि हमसे ज्यादा मूढ़ कोई भी नहीं है। हम जो भी महत्वपूर्ण है उसका त्याग कर देते हैं और जो व्यर्थ है उस कचरे को इकट्ठा कर लेते हैं, किन्तु ये बहुत होशियार लोग हैं। यह जो व्यर्थ है उस सबको छोड़ देते हैं, जो सार्थक है उसको बचा लेते है। जीसस की पूरी नयी बाइबिल का सार एक ही वचन है. "दूसरों के साथ वह मत करें, जो आप नहीं चाहते कि दूसरे आपके साथ करें।" और अगर इस वाक्य को ठीक से समझ लें तो धर्म का सूत्र समझ में आ जाय। कई बार ऐसा मजेदार होता है कि कृष्ण के किसी वाक्य की व्याख्या बाइबिल में होती है और बाइबिल के किसी वाक्य की व्याख्या गीता में होती है। कभी कुरान के किसी सूत्र की व्याख्या वेद में होती है, कभी वेद के किसी सूत्र की व्याख्या कोई यहूदी फकीर करता है। कभी बुद्ध का वचन चीन में समझा जाता है और कभी चीन में लाओत्से का कहा गया वचन हिन्दुस्तान का कोई कबीर समझाता है। लेकिन तथा-कथित धर्मो ने ऐसी दीवालें खड़ी कर दी हैं इन सबके बीच कि इनके बीच जो बहुत आंतरिक संबंध के सूत्र दौड़ते हैं उनका हमें कोई स्मरण नहीं रहा। नहीं तो हर मंदिर और मस्जिद के नीचे सुरंग होनी चाहिए जिनसे कोई भी मंदिर से मस्जिद में जा सके। और हर गुरद्वारे के नीचे से मंदिर को जोड़ने वाली सुरंग होनी चाहिए कि कभी भी किसी की मौज आ जाय तो तत्काल गुरद्वारे से मंदिर, या मस्जिद से चर्च में जा सके। लेकिन सुरंगों की बात तो दूर, ऊपर के रास्ते भी बन्द हैं–सब रास्ते बन्द हैं जो हमने अपने हाथों कर रखे हैं। ● ●

एक अकहानी

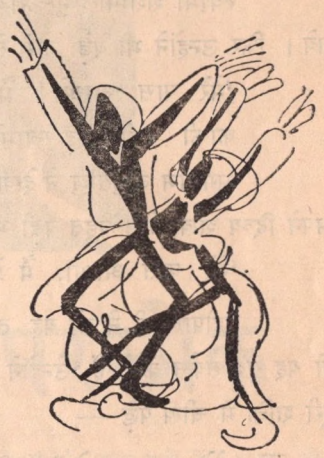

मेरे पास आओ

—ब्रह्मदत्त

स्वामी शशमौलि, आचार्य ऋक्षनाथ और भगवान अमृतांशु, तीनों एक साथ चौपाटी पर घूम रहे थे। महीपाल जी, ज्योतिशिखा का पेट भरने के लिए आहार की तलाश में, प्रायवेट-जासूस की तरह चुपचाप तीनों के पीछे लगे हुए थे। तीनों खामोश चलते दिखायी दे रहे थे। वैसे तीनों में बड़े जोरों से मौन वार्तालाप हो रहा था, परन्तु महीपाल जी को तो कुछ सुनायी नहीं पड़ रहा था। झींखते, झल्लाते, आशा का दामन थामे, वे घंटों ही उन तीनों के पीछे लगे रहे।

लोकमान्य तिलक के पुतले के पास आकर तीनों रुक गये। महीपाल जी भी चुपचाप एक भेलपुरी वाले के पास जा खड़े हुए। बड़ी हसरत भरी निगाहों से वे कभी भेलपुरी की दुकान देखते और कभी तीनों दाताओं को। एकाएक तीनों में

कोई बात हो गयी और चौपाटी की जनता को सम्बोधित करते हुए आचार्य ऋक्ष-नाथ चिल्लाये—

'मेरे पास आओ ! मैं मृत्यु सिखाता हूँ ।'

कुछ निठल्ले, बेकार घूम रहे लोग उनके पास आकर खड़े हो गये ।

स्वामी शशमौलि मुस्कराये। वे बाकी दोनों से थोड़ा अलग हटकर खड़े हो गये। फिर उन्होंने भी बड़े जोरों से हांक लगायी—

'मेरे पास आओ! मैं नाच सिखाता हूँ।'

काफी बड़ी भीड़ स्वामी शशमौलि के सामने इकट्ठी हो गयी।

भगवान अमृतांशु ने देखा और अपना चौथा बाहु निकालकर फूंक दिया अपने दिव्य शंख को। बहुत बड़ी भीड़ उनके सामने जमा हो गयी।

'मेरे पास आओ, मैं प्रेम सिखाता हूँ,' वे बोले।

महीपाल जी ने जो यह तमाशा देखा तो और झींख उठे। भगवान लोग भी यह सब सर्कस करते हैं, उन्होंने सोचा और भेलपुरी की दुकान से ही अपनी पूरी शक्ति में चीख पड़े —

'मेरे पास आओ ! मैं फिल्मों में एक्टिंग सिखाता हूँ ।'

स्वामी शशमौलि, आचार्य ऋक्षनाथ और भगवान अमृतांशु मुंह बाये खड़े रह गये। तीनों के आगे की भीड़ महीपाल जी के सामने जा खड़ी हुई!

★

बिन मांगे सच्चे रत्नों से झोली भर दी,
बिन चाहे मेरे जीवन में खुशियाँ भर दीं !
ये कैसे क्या कुछ हुआ, तुम्हीं जानो प्रभुवर !
अनहोनी थी जो बात, उसे होनी कर दी !

—जगदीश जैन

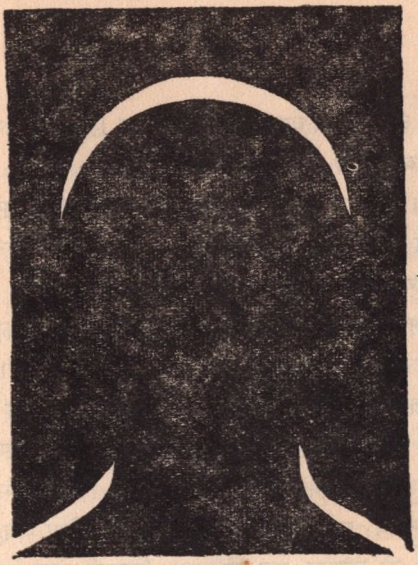

मृत्यु और परलोक

इस जगत में अज्ञान के अतिरिक्त और कोई मृत्यु नहीं है। अज्ञान ही मृत्यु है, 'इग्नोरेस इज डेथ'। क्या अर्थ हुआ इसका कि अज्ञान ही मृत्यु है? अगर अज्ञान मृत्यु है, तो ही ज्ञान अमृत हो सकता है। अज्ञान मृत्यु है, इसका अर्थ हुआ कि मृत्यु कहीं है ही नहीं। हम नहीं जानते इसलिए मृत्यु मालूम पड़ती है। मृत्यु असंभव है। मृत्यु इस पृथ्वी पर सर्वाधिक असंभव घटना है जो हो ही नहीं सकती, जो कभी हुई नहीं, जो कभी होगी नहीं लेकिन रोज मृत्यु मालूम पड़ती है। हम अंधेरे में खड़े हैं, अज्ञान में खड़े हैं। जो नहीं मरता वह मरता हुआ दिखायी पड़ता है। इस अर्थ में अज्ञान ही मृत्यु है। और जिस दिन हम यह जान लेते हैं उस दिन मृत्यु तिरोहित हो जाती है और अमृत ही, अमृत्व ही शेष रह जाता है। 'इममारटालिटी' ही शेष रह जाती है। कभी आपने ख्याल किया कि आपने किसी आदमी

को मरते देखा ? आप कहेंगे बहुत लोगों को देखा । पर मैं कहता हूं कि नहीं देखा । आज तक किसी व्यक्ति ने किसी को मरते नहीं देखा । मरने की प्रक्रिया आज तक देखी नहीं गयी । जो हम देखते हैं वह केवल जीवन के विदा हो जाने की प्रक्रिया है, मरने की नहीं । जैसे बटन दबाया हमने, बिजली का बल्ब बुझ गया । जो नहीं जानता, वह कहेगा बिजली मर गयी । जो जानता है, वह कहेगा बिजली अभिव्यक्त थी, अब अनभिव्यक्त हो गयी । प्रकट थी, अब अप्रकट हो गयी । मर नहीं गयी । फिर बटन दबेगा, बिजली फिर वापस लौट आयेगी । फिर बटन दबायेंगे, बिजली फिर भीतर तिरोहित हो जायगी । जीवन समाप्त नहीं होता । केवल शरीर से विदा होता है । लेकिन विदायी हमें मृत्यु मालूम पड़ती है । क्यों मालूम पड़ती है ? क्योंकि हमने कभी अपने भीतर शरीर से अलग किसी अस्तित्व का अनुभव नहीं किया । हमारा अनुभव यही है कि मैं शरीर हूं । इसलिए जब शरीर समाप्त होगा, जलाने के योग्य हो जायगा, तब स्वभावतः निष्कर्ष होगा कि मर गये । शरीर से अलग अपने भीतर जिसने किसी तत्व को नहीं जाना, वह अज्ञानी है । अज्ञानी का मतलब यह नहीं कि जिसे युनिवर्सिटी की डिग्री नहीं मिली है । विश्वविद्यालय का कोई सर्टिफिकेट नहीं है । सच तो यह है, विश्वविद्यालय ने जितने सर्टिफिकेट दिये, अज्ञान उतना बढ़ा है, कम नहीं हुआ । कारण हैं इसके । कारण यह है कि विश्वविद्यालय के सर्टिफिकेट को लोग ज्ञान समझने लगे इसलिए असली ज्ञान की खोज की कोई जरूरत नहीं मालूम पड़ती । अज्ञानी आदमी के पास सर्टिफ़िकेट नहीं होता, वह ज्ञान की खोज करता है । तथाकथित ज्ञानी के पास सर्टिफिकेट होता है, वह मान लेता है कि मैं ज्ञानी हूं । मेरे पास युनिवर्सिटी की डिग्री है, और क्या चाहिए ?

ज्ञान तो सिर्फ एक है, स्वयं का ज्ञान, बाकी सब सूचनाएं हैं, 'इन्फर्मेशन' हैं 'नालेज' नहीं । बाकी सब परिचय है ज्ञान नहीं । रसल ने ज्ञान के दो हिस्से किये हैं – नालेज और अक्वेंटेंस । ज्ञान और परिचय । ज्ञान तो सिर्फ एक ही चीज का हो सकता है, 'वह, मैं हूं,' बाकी सब परिचय है, ज्ञान नहीं । अपने से पृथक जिसे भी मैं जानता हूं वह सिर्फ अक्वेंटेंस, परिचय है । जान तो सिर्फ अपने को सकता हूं, क्योंकि अपने से जो भिन्न है उसके भीतर मेरा प्रवेश नहीं हो सकता, सिर्फ बाहर घूम सकता हूं । परिचय ही कर सकता हूं । ऊपर ऊपर से जान सकता हूं, भीतर तो नहीं जा सकता., भीतर तो सिर्फ एक ही जगह जा सकता हूं जहां 'मैं हूं' । यह बहुत मजे की बात है कि अपना परिचय नहीं होता, और दूसरे का ज्ञान नहीं होता । दूसरे का परिचय होता है, अपना ज्ञान होता है । अपना परिचय इसलिए नहीं होता क्योंकि अपने बाहर घूमने का उपाय नहीं । दूसरे का ज्ञान इसलिये नहीं होता क्योंकि दूसरे

के भीतर प्रवेश नहीं है । लेकिन हम बड़े अजीब लोग हैं । हम अपना परिचय कर लेते हैं जो कि हो नहीं सकता, और हम दूसरे के ज्ञान को ज्ञान समझ लेते हैं जो हो नहीं सकता । यह अज्ञान की स्थिति है । अज्ञान में मृत्यु है । जब आप एक व्यक्ति को बुझते देखते हैं--बुझते, मरते नहीं, इसलिए बुद्ध ने ठीक शब्द का उपयोग किया है, वह शब्द है निर्वाण । निर्वाण का अर्थ है दिये का बुझना । बस, दिया बुझ जाता है । कोई मरता नहीं । दिखायी पड़ती थी ज्योति, अब नहीं दिखायी पड़ती । देखने के क्षेत्र से विदा हो जाती है, अदृश्य में लीन हो जाती है । फिर प्रगट हो सकती है, फिर लीन हो सकती है । यह प्रगट-अप्रगट होने का क्रम अनंत चल सकता है । जब तक कि ज्योति पहचान न ले कि प्रगट में भी मैं वही हूं, अप्रगट में भी मैं वही हूं । न मैं प्रगट होती, न मैं अप्रगट होती, सिर्फ रूप प्रगट होता और अप्रगट होता है । वह जो रूप के भीतर छिपा हुआ सत्व है वह न प्रगट में प्रगट होता, न अप्रगट में अप्रगट होता है । न जीवन में जीवित होता, न मृत्यु में मरता है । तब अमृत का अनुभव है । हम दूसरों को मरते देख कर, बुझते देखकर हिसाब लगा लेते हैं कि सब मरते हैं तो मैं भी मरूंगा । लेकिन कभी किसी मरने वाले से पूछा, कि मर गये ? लेकिन वह उत्तर नहीं देता । इसलिए मान लेते हैं कि 'हां' में उत्तर देता होगा । मौन को सम्मति का लक्षण समझने की बात सभी जगह ठीक नहीं है । मरे हुए आदमी से पूछो, मर गये ? अगर वह उत्तर दे तो समझना मरा नहीं, और अगर मौन रह जाय तो हम समझ लेते हैं कि मर गया । लेकिन मौन सम्मति का लक्षण नहीं । नहीं बोल पा रहा है इसलिए मर गया, ऐसा समझने का कोई कारण नहीं ।

दक्षिण में ब्रह्मयोगी एक साधु ने आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी, कलकत्ता और रंगून युनिवर्सिटी में मरने के प्रयोग करके दिखाये थे । वह दस मिनट के लिए मर जाते थे । कलकत्ता युनिवर्सिटी में दस डाक्टर मौजूद थे । जिन्होंने सर्टिफिकेट लिखा कि यह आदमी मर गया, क्योंकि मृत्यु के जो भी लक्षण हैं, चिकित्सा शास्त्र के पास, पूरे हो गये थे । श्वास नहीं, बोल नहीं सकता, खून में गति नहीं रही, ताप गिर गया नाड़ी बन्द हो गयी, हृदय की धड़कन नहीं है, सब सूक्ष्मतम यंत्रों ने कह दिया कि आदमी मर गया । उन दस ने लिखा, दस्तखत किये कि ब्रह्मयोगी कह के गये थे कि दस्तखत करके 'डेथ सर्टिफिकेट' दे देना कि मैं मर गया । फिर दस मिनट बाद सब वापस लौट आया । श्वांस फिर चली, धड़कन फिर चली, खून फिर बहा, उस आदमी ने आंख भी खोली, वह बोलने भी लगा, उठ के बैठ गया । उसने कहा, अब मैं आपके सर्टिफिकेट के संबंध में क्या मानूं ? आप बड़े जालसाज हैं, जिंदा आदमी को मरने का सर्टिफिकेट देते हैं । उन्होंने कहा, जहां तक हम जानते थे, मौत घट गयी थी । उसके

आगे हम नहीं जानते। लेकिन, उनमें से एक डाक्टर ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि उस दिन से मैं फिर मृत्यु का सर्टिफिकेट नहीं दे सका किसी को भी। क्योंकि उस दिन जो मैंने देखा, उससे साफ हो गया कि मृत्यु के लक्षण, सिर्फ विदा होने के लक्षण हैं। और चूंकि आदमी लौटना नहीं जानता इसलिए हमारे सर्टिफिकेट सही हैं, वरना सब गलत हो जाते। वह ब्रह्मयोगी लौटना जानता है। तीन बार, लंदन, कलकत्ता और रंगून विश्वविद्यालय में उन्होंने मर के दिखाया और तीनों जगह पृथ्वी पर पहला आदमी है जिसने तीन दफा मृत्यु का सर्टिफिकेट लिया।

यह हुआ क्या? जब ब्रह्मयोगी से चिकित्सक पूछते कि हुआ क्या, किया क्या? तो वह कहते कि मैं सिर्फ सिकोड़ लेता हूं अपने जीवन को। जैसे कि सूरज अपनी किरणों को सिकोड़ ले। जैसे कि फूल अपनी पंखुड़ियों को बन्द कर ले, जैसे पक्षी अपने पंखों को सिकोड़कर और अपने घोंसले में बैठ जाय, ऐसे। मैं सिकोड़ लेता हूं जीवन को, भीतर, भीतर---वहां जहां तुम्हारे यंत्र नहीं पकड़ पाते। होता तो मैं हूं ही इसलिए वापस लौट आता हूं। फिर खोल देता हूं पंखों को, फिर जीवन के आकाश में उड़ आता हूं घोंसले के बाहर। हम सब के भीतर वह गुह्य स्थान है जहां आत्मा सिकुड़ जाय तो फिर यंत्र पता नहीं लगा पाते, इंद्रियां पता नहीं लगा पातीं। असल में यंत्र इंद्रियों के एक्सटेंशन से ज्यादा नहीं हैं। यंत्र हमारी ही इंद्रियों का विस्तार हैं। आंख है, तो हमने दूरबीन और खुर्दबीन बनायी। वह आंख का विस्तार है जो आंख को मेग्नीफाई कर देती है, बढ़ा देती है। कान है, तो टेलिफोन बनाया, वह कान का विस्तार है। मेरा हाथ है, यहां से बैठ के मैं आपको छू नहीं सकता। मैं एक डण्डा हाथ में पकड़ लूं और उससे आपको छुऊं तो डण्डा मेरे हाथ का विस्तार हो गया। सारे यंत्र हमारी इंद्रियों के विस्तार हैं। अबतक एक भी यंत्र नहीं बना जो हमारी इंद्रियों से अन्य हो, विस्तार न हो। सब एक्सटेंशंस हैं। इंद्रियां जिसे नहीं पकड़ पातीं, यंत्र कभी कभी उसे पकड़ लेता है, सूक्ष्म होता तो। लेकिन जो अतींद्रिय है उसे यंत्र भी नहीं पकड़ पाता। सूक्ष्म हो, इंद्रिय की पकड़ के बाहर हो, तो यंत्र पकड़ लेता है। लेकिन जो अतींद्रिय है, (सूक्ष्म नहीं, अतींद्रिय, यानी इंद्रियों के पार) पैरासाइकिक है उसको फिर यंत्र भी नहीं पकड़ पाता। जीवन ऊर्जा पैरासाइकिक है, अतींद्रिय है इसलिए कोई यंत्र उसकी गवाही नहीं दे सकता। इस जीवन ऊर्जा को जानने का एक ही उपाय है, वह इंद्रियों के द्वारा नहीं, इंद्रियों के पीछे सरक कर ---इंद्रियों के माध्यम से नहीं, इंद्रियों के माध्यम को छोड़कर। ज्ञानी इंद्रियों के माध्यम को छोड़कर स्वयं को जानता है और एक क्षण भी यह झलक मिल जाय स्वयं की तो वह अमृत उपलब्ध हो जाता है। जिसकी कोई मृत्यु नहीं वह सत्य दिखायी पड़ जाता है---

जिसका कोई प्रारंभ नहीं, कोई अंत नहीं। ज्ञानी अमृत को उपलब्ध हो जाते हैं।

अलकेमिस्ट कहते हैं कि हम खोज रहे हैं वह तत्व जिससे आदमी अमर हो जायगा, वे कभी न खोज पायेंगे। आदमी अमर है ही, किसी चीज से अमर करने की जरूरत नहीं है। चेतना अमर है ही। और ऐसा मत सोचना कि पदार्थ मरता है और चेतना अमर है। पदार्थ भी अमर है और चेतना भी अमर है। पदार्थ इसलिए अमर है कि वह जीवित ही नहीं है। जो जीवित हो वही मर सकता है। पदार्थ कैसे मरेगा, जब जीवित ही नहीं है। इसलिये पदार्थ अमर है, उसकी मृत्यु का कोई उपाय नहीं है। आत्मा इसलिए अमर है कि वह जीवित है। जो जीवित है वह मर कैसे सकता है? जीवन की कोई मृत्यु नहीं हो सकती, मृत्यु का कोई जीवन नहीं हो सकता। पदार्थ का सिर्फ अस्तित्व है, जीवन नहीं। आत्मा का जीवन भी है और अस्तित्व भी। इस बात को ख्याल में रख लें– 'एक्जीस्टेंस एण्ड लाइफ बोथ,' आत्मा की, पदार्थ की, 'एक्जीस्टेंस ओनली,'––। पदार्थ सिर्फ 'है', लेकिन पदार्थ को अपने होने का पता नहीं है। आत्मा 'है' भी और उसे 'अपने होने' का भी पता है। बस यह होने का पता उसे जीवन बना देता है। हम आत्मा हैं, क्योंकि हम हैं और हमें अपने होने का भी पता है, हम जीवित भी हैं; लेकिन हम क्या हैं इसका हमें कोई भी पता नहीं। होने का पता हो और यह पता न हो कि क्या हैं, तो अज्ञान की स्थिति है। होने का पता हो और यह भी पता हो कि क्या हैं, तो ज्ञान की स्थिति है। अज्ञानी में उतनी ही आत्मा है जितनी ज्ञानी में, रत्ती भर कम नहीं है। लेकिन अज्ञानी अपने प्रति बेहोश है, ज्ञानी अपने प्रति होश से भरा हुआ है। ऐसे व्यक्ति जो ज्ञान अमृत को उपलब्ध हो जाते हैं वे परलोक में परम परात्पर ब्रह्म को पाते हैं।

परलोक का क्या अर्थ है? क्या मरने के बाद? आमतौर से हमें यही ख्याल है कि परलोक का अर्थ मरने के बाद है। लेकिन जब आत्मा मरती ही नहीं तो मरने के बाद परलोक का अर्थ ठीक नहीं है। परलोक कहीं मरने के बाद और नहीं है, परलोक अभी और यहीं मौजूद है। 'जस्ट बाई द कार्नर'–पर हमें उसका कोई पता नहीं। जिसे अपना पता नहीं उसे परलोक का पता नहीं हो सकता। क्योंकि परलोक में जाने का द्वार स्वयं का अस्तित्व है। स्वयं का ही होना है। जिसे अपना पता है वह एक ही साथ परलोक और लोक की देहरी पर खड़ा हो जाता है। इस तरफ झांकता है तो लोक, उस तरफ झांकता है तो परलोक। बाहर सिर करता है तो लोक, भीतर सिर करता है तो परलोक। परलोक अभी और यहीं है। ब्रह्म कहीं दूर नहीं है, आपके बिल्कुल पड़ोस में है, आपके पड़ोसी से भी ज्यादा पड़ोस में है। आपके बगल में जो बैठा है आदमी, उसमें और आपमें भी फासला है। लेकिन उससे भी पास ब्रह्म है।

आपमें और उसमें फासला भी नहीं है। 'जब जरा गर्दन झुकायी, देख ली, दिल के आइने में है तस्वीरे यार'। बस इतना ही फासला है गर्दन झुकाने का। यह भी कोई फासला हुआ ? बाहर लोक है और भीतर परलोक है।

तो ध्यान रखें, लोक और परलोक का विभाजन समय में नहीं, स्थान में है। इस बात को ठीक से ख्याल में ले लें। लोक और परलोक का विभाजन 'टाइम डिविजन' नहीं है कि मैं मरूंगा, मरने की घटना या विदा होने की घटना समय में घटेगी, और फिर उस मरने के बाद जो होगा वह परलोक होगा। हमने अबतक परलोक को टेम्पोरल समझा है, टाइम में बांटा है। परलोक भी स्पेसियल है, स्पेस में बंटा है, टाइम में नहीं। अभी यहीं, लोक भी मौजूद है, परलोक भी मौजूद है; पदार्थ भी मौजूद है, परमात्मा भी मौजूद है। फासला समय का नहीं, फासला सिर्फ स्थान का है और स्थान का भी फासला हमारी दृष्टि का फासला, अटेंशन का फासला है।

अगर हम बाहर की तरफ ध्यान दे रहे हैं तो परलोक खो जाता है, अगर हम परलोक की तरफ ध्यान दें तो लोक खो जाता है। रात आप सो जाते हैं तब लोक खो जाता है। मैं पूछता हूं क्या आपको तब याद रहता है कि बाजार में आपकी एक दुकान है ? आपका एक बेटा है ? कि आपकी एक पत्नी है ? कि आपका बैंक बैलेस इतना है ? कि आप कर्जदार हैं ? कि लेनदार हैं ? यानी जब आप सोते हैं तो लोक खो जाता है। लेकिन परलोक शुरू नहीं होता। निद्रा, लोक और परलोक के बीच में है। निद्रा मूर्च्छा है। लोक भी खो जाता है, परलोक भी शुरू नहीं होता। ध्यान की अवस्था लोक और परलोक के बीच में है। लोक खोता है, परलोक शुरू हो जाता है। जैसे एक आदमी अपने मकान के दरवाजे की दहलीज पर बैठ जाय आंख बन्द करके तो न घर दिखायी पड़े, न बाहर दिखायी पड़े। फिर वह आदमी बाहर की तरफ देखे तो भीतर का दिखायी न पड़े, फिर वह मुड़कर खड़ा हो जाय, तो भीतर का दिखायी पड़े बाहर का दिखायी न पड़े। ऐसी तीन स्थितियां हुईं। लोक की—जब हम बाहर देख रहे हैं और 'कांसेसनेस' चेतना बाहर की तरफ जाती हुई हो। परलोक की—जब चेतना भीतर की तरफ जाती हुई हो। निद्रा की—जब चेतना किसी तरफ जाती हुई नहीं, सो गयी हो।

जब कहा जाता है कि परलोक में व्यक्ति आनन्द को उपलब्ध होता है, तो क्या इसका यह मतलब है कि जिस व्यक्ति ने ब्रह्म को जाना, आत्मा की अमरता को जाना वह मरने के बाद आनंद को उपलब्ध होगा, और अभी नहीं होगा ? नहीं, अभी हो जायगा, यहीं हो जायगा। लेकिन जो व्यक्ति इस अमृत्व को नहीं जानता वह उस परलोक में, उस भीतर के लोक में, उस पार के लोक में, कैसे आनन्द को उपलब्ध

होगा ? वह संसार में भी दुख पाता है, यानी बाहर भी दुख पाता है और भीतर भी दुख पाता है । इसे ठीक से समझ लें ।

बाहर इसलिए दुख पाता है कि जिसको यह ख्याल है कि मृत्यु है, वह बाहर कभी सुख नहीं पा सकता । मृत्यु का ख्याल बाहर के सब सुखों को विषाक्त कर जाता है, 'वायजनस' कर जाता है। बाहर अगर सुख लेना है थोड़ा बहुत तो मृत्यु को बिल्कुल भूलना पड़ता है। इसलिए हम मृत्यु को भुलाने की कोशिश करते हैं । लेकिन ध्यान रहे, जिसे भी हम भुलाते हैं उसकी और याद आती है । स्मृति का नियम है, भुलायें याद आयेगी । अर्थी निकलती है द्वार से तो लोग घर का दरवाजा बन्द करके बच्चों को भीतर कर लेते हैं । मौत याद न आ जाय, क्योंकि जिसे मौत याद आ गयी उसके जीवन में संन्यास को ज्यादा देर नहीं है । जो मौत को भुला ले वही संसार में हो सकता है । इसलिए मौत को छिपाते हैं, हजार ढंग से छिपाते हैं । गांव के बाहर बनाते हैं मर-घट । मरा नहीं आदमी कि ले जाने की इतनी जल्दी पड़ती है जिसका हिसाब नहीं । रहने दें थोड़ी देर, लोगों को देख लेने दें, स्मरण कर लेने दें कि यही घटना उनकी भी घटने वाली है । जिस आदमी को वर्षों चाहा और प्रेम किया उसको विदा करने की इतनी शीघ्रता क्यों है? शीघ्रता का आंतरिक कारण है—जो मनोवैज्ञानिक है । मरे हुए की मौजूदगी हमें अपने मरे होने की खबर लाती है । मृत्यु का निशान न रह जाय जीवन के पर्दे पर कहीं, उसे फौरन अलग कर दो । और मजे बात यह है कि जन्म के बाद अगर कोई चीज 'सरटेन्टी' है, कोई चीज निश्चित है तो वह मृत्यु ही है। जन्म के बाद अगर कोई चीज़ प्रिडिक्टेबल है, किसी चीज की भविष्यवाणी की जा सकती है तो वह मुत्यु है, बाकी किसी चीज की भी भविष्यवाणी की नहीं जा सकती । भविष्यवाणी का यह मतलब नहीं कि तारीख और दिन बताया जा सकता है, भविष्य-वाणी का यह मतलब कि मुत्यु होगी ही इतना तय है । बाकी सब चीजें, हों भी, न भी हों । विवाह हो भी सकता है, न भी हो । स्वास्थ्य रहे भी, न भी रहे । बीमारी आये भी, न भी आये । धन मिले भी, न भी मिले । लेकिन मुत्यु के बाबत ऐसा नहीं कहा जा सकता कि हो भी, न भी हो । जो इतनी निश्चित है घटना उसे हम बाहर रखते हैं और कई चीज़ों से भुलाते हैं । लेकिन हर जगह उसकी खबर मिल जाती है । फूल सुबह खिलता और सांझ मुर्झा जाता है । और कह जाता है कि मौत है । प्रेम घड़ी भर खिलता और सूख जाता है और खबर दे जाता है कि मौत है । जवानी आती और चली जाती है और खबर दे जाती है कि मौत है । हरे पत्ते लगते और पतझड़ में झड़ जाते हैं पर ख़बर दे जाते हैं, मौत है । सुबह सूरज उगता और सांझ डूबने लगता है और खबर दे जाता है कि मौत

है । जिसकी जिन्दगी में अभी अमृत का पता नहीं चला, उसका सब विषाक्त हो जाता है । सब प्वायजन्ड हो जाता है । कोई सुख हो नहीं सकता । जब तक मृत्यु की कालिमा पीछे खड़ी है, सब सुख अन्धेरे हो जाते हैं । सच तो यह है कि मृत्यु की कालिमा दुख के क्षण में उतनी गहन नहीं होती, सुख के क्षण में बहुत गहन हो कर दिखाई पड़ती है ।

कीरगार्ड ने लिखा है, कि प्रेम के क्षण में मृत्यु जितनी प्रगाढ़ मालूम होती है उतनी कभी नहीं मालूम होती । अगर कृष्णमूर्ति को सुनें, अगर वह डेथ पर बोलना शुरू करें तो लव पर जरूर बोलेंगे । अगर लव पर बोलना शुरू करें तो फिर डेथ पर जरूर बोलेंगे । उसी भाषण में, बाहर नहीं जा सकते । यह बात क्या है? प्रेम की जहां सुख की झलक आयी वहां तत्काल पता लगता है कि जिसे हम प्रेम कर रहे हैं वह मरेगा, जो प्रेम कर रहा है वह भी मर जायगा, बीच में जो प्रेम बह रहा है वह भी मर जायेगा । प्रेम के सघन क्षण में मृत्यु बहुत प्रगाढ़ होकर दिखायी पड़ती है । प्रेम सुख लाता है, पीछे से मृत्यु का स्मरण ले आता है । जहां जहां सुख है वहां वहां मौत पीछे खड़ी हो जाती है । इसीलिए तो सुख क्षणभंगुर है । हम ले भी नहीं पाते और मौत उसे हड़प जाती है । जिसको भीतर के अमृत का पता नहीं वह परलोक में तो आनन्द पा ही नहीं सकता, इस लोक में भी सिर्फ दुख पाता है ।

दूसरी बात भी कह देने जैसी कि जो परलोक में आनन्द पाता है वह इस लोक में भी आनन्द पाता है । ये जुड़े हुए हैं । जिसे भीतर आनन्द मिला उसे बाहर भी आनन्द ही आनन्द हो जाता है । ध्यान रहे, उसकी सारी दृष्टि बदल जाती है । जिसे भीतर आनन्द नही मिला उसे वसन्त में भी मृत्यु नजर आती है, पतझड़ दिखायी पड़ता है । उसे बच्चे के पीछे भी बूढ़े का जीर्ण जर्जर शरीर दिखायी पड़ता है । उसे जवानी की तरंगों में भी मौत का गिर जाना और मिट जाना दिखायी पड़ता है । उसे सुख के क्षण में भी पीछे खड़े दुख की प्रतीति होती है । अज्ञान में सब सुख, दुख हो जाते हैं । ज्ञान में सब दुख भी सुख हो जाते है । उस तरह के व्यक्ति को पतझड़ में भी आने वाले वसन्त की पदचाप सुनायी पड़ती है । वृक्ष से सूखे गिरते पत्ते में भी नये पत्तों के अंकुरित होने की ध्वनि का बोध होता है । सांझ डूबते हुए सूरज में मी सुबह के उगने वाले सूरज की तैयारी का पता चलता है । विदा होते बूढ़े में भी पैदा होने वाले बच्चों के जन्म की खबर मिलती है । मृत्यु का द्वार भी उसे जन्म का द्वार बन जाता है । अंधेरा भी उसे प्रकाश की पूर्व भूमिका मालूम पड़ती है । सुबह अंधेरा जब गहन हो जाता तभी वह जानता है कि आने वाली भोर निकट है । दृष्टि बदल जाती है, सब उल्टा

हो जाता है।

एक युवक ने कल संन्यास लिया। मां को, पिता को, वरदान मालूम पड़ना चाहिए, लेकिन मां मेरे पास आयी। छाती पीटकर रोती है, कहती है कि मैं जहर खाकर मर जाऊंगी। ये कपड़े उतरवा दो। मां कहती है, मेरे तीन बच्चे पहले मर चुके। मेरा मन उससे पूछने का होता है, लेकिन पूछता नहीं कि तीन बच्चे मर गये तब तूने जहर नहीं खाया। इसने कुछ भी नहीं किया, सिर्फ गैरुआ वस्त्र ऊपर डाले और तू जहर खाके मर जायेगी? यह तेरा लड़का चोर हो जाता तब तू जहर खाके मरती? यह लड़का बेईमान हो जाता, तब तू जहर खाके मरती? यह लड़का पोलिटीशियन हो जाता तब तू जहर खाके मरती? नहीं, तब अभिशाप भी वरदान मालूम होते। अभी वरदान उतरा है इस लड़के के ऊपर! मां को नाचना चाहिए, पिता को आनन्द मनाना चाहिए। फिर यह कहीं जा नहीं रहा है छोड़के, घर ही रहेगा। लेकिन नहीं, अज्ञान में वरदान भी अभिशाप मालूम पड़ते हैं। वह छाती पीटती है और रोती है। नहीं इसमें कुछ आकस्मिक नहीं है। बड़ी स्वाभाविक बात है। अज्ञान बड़ा स्वाभाविक है, आकस्मिक नहीं है।

बुद्ध जैसे व्यक्ति ने संन्यास लिया और जब बारह वर्ष के बाद ज्ञान के सूर्य को जगाकर घर वापस लौटे तब भी बाप को दिखायी नहीं पड़ा कि बेटे का जीवन रूपांतरित हुआ। उन्हें दिखायी न पड़ा कि लाखों लोगों के जीवन में बुद्ध से रोशनी पहुंची। दस हजार भिक्षु बुद्ध के साथ पीछे खड़े हैं। उनके पीत वस्त्रों में उनके भीतर का प्रकाश झलकता है। लेकिन बाप ने गांव के दरवाजे पर यही कहा कि मैं तुझे अभी भी माफ कर सकता हूं। तू वापस लौट आ। यह भूल छोड़, बहुत हो चुका, नासमझी बन्द कर। मुझ बूढ़े को इस बुढ़ापे में मृत्यु के निकट होने में दुख मत दे। बाप को नहीं दिखायी पड़ सका कि किससे वह कह रहे हैं। बुद्ध हंसने लगे। बुद्ध ने कहा, गौर से तो देख लें। बारह वर्ष पहले जो घर से गया था वही वापस नहीं लौटा, वह तो कभी का जा चुका। यह कोई और है, जरा गौर से तो देखें। लेकिन बाप ने कहा, तू मुझे सिखायेगा? मैं तुझे जानता नहीं? मेरा खून बहता है तेरी नसों में। मैं तुझे जितना जानता हूं, उतना कौन तुझे जान सकता है? बुद्ध ने कहा, आप अपने को ही जान लें तो काफी है। मुझे जानने के भ्रम में मत पड़ें। क्योंकि दूसरे के जानने के भ्रम में वही पड़ता है जो स्वयं को नहीं जानता है। बाप की तो आग भड़क गयी, क्रोध भारी हो गया। उन्होंने कहा, यह मैंने

सोचा भी न था कि तू अपने ही बाप से इस तरह बातें बोलेगा। बुद्ध जैसा बेटा भी घर में हो तो बाप के लिए अभिशाप मालूम पड़ता है। अज्ञान सब वरदानों को अभिशाप कर लेता है, सब फूलों को कांटा बना लेता है। ज्ञान कांटों को भी फूल बना लेता है। जिसे अन्तः लोक में आनन्द है उसे बाहर के जगत में दुख की कोई रेखा भी शेष नहीं रह जाती, और जिसे बाहर के लोक में दुख है उसे भीतर के लोक का कोई पता ही नहीं होता, आनन्द की तो बात ही मुश्किल है। ● ●

☆

भगवत्प्रेम

जगत में तीन प्रकार के प्रेम हैं – एक वस्तुओं का प्रेम, जिससे हम सब परिचित हैं, अधिकतर हम वस्तुओं के प्रेम से ही परिचित हैं। दूसरा व्यक्तियों का प्रेम। कभी लाख में एकाध आदमी व्यक्ति के प्रेम से परिचित होता है। लाख में एक कह रहा हूं, सिर्फ इसलिए कि आपको अपने बचाने की सुविधा रहे कि मैं तो लाख में एक हूं ही। नहीं, इस तरह बचाना मत।

एक फ्रेंच चित्रकार सींजां एक गांव में ठहरा। उस गांव के होटल के मैनेजर ने कहा, यह गांव स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत अच्छा है। यह पूरी पहाड़ी अद्भुत है। सींजां ने पूछा, इसके अद्भुत होने का राज़, रहस्य, प्रमाण ? उस मैनेजर ने कहा, राज और रहस्य तुम रहोगे यहां तो पता चल जायगा। प्रमाण यह है कि इस पूरी पहाड़ी पर रोज एक आदमी से ज्यादा नहीं मरता। सींजां ने जल्दी से पूछा, आज मरने वाला आदमी मर गया या नहीं ? नहीं तो मैं भागूं।

आदमी अपने को बचाने के लिए बहुत आतुर है। अगर मैं कहूं, लाख में एक, तो आप कहेंगे बिल्कुल ठीक। छोड़ा अपने को, आपको भर नहीं छोड़ रहा हूं, ख्याल रखना। लाख में एक आदमी व्यक्ति के प्रेम को उपलब्ध होता है। शेष आदमी वस्तुओं के प्रेम में ही जीते हैं। आप कहेंगे, हम व्यक्तियों को प्रेम करते हैं, लेकिन मैं आपसे कहूंगा, वस्तुओं की भांति, व्यक्तियों की भांति नहीं। आज एक मित्र आये संन्यास लेने, पत्नी को साथ लेकर आये। पत्नी को समझाया कि

वे घर छोड़ के नहीं जायेंगे, पति ही रहेंगे। पिता ही रहेंगे। संन्यास उनकी आंतरिक घटना है, चिन्तित होओ मत, घबराओ मत। लेकिन उस पत्नी ने कहा, नहीं मैं संन्यास नहीं लेने दूंगी। मैंने कहा, कैसा प्रेम है यह? अगर प्रेम गुलामी बन जाय तो प्रेम है? प्रेम अगर स्वतंत्रता न दे तो प्रेम है? प्रेम अगर जंजीरें बन जाय तो प्रेम है? फिर यह पति व्यक्ति न रहा, वस्तु हो गया। युटीलिटेरियन, यह व्यक्ति नहीं रहा। पत्नी कहती है, मैं आज्ञा नहीं दूंगी तो नहीं लेंगे संन्यास। व्यक्ति का सम्मान न रहा, उसकी स्वतंत्रता का सम्मान न रहा, उसका कोई अर्थ न रहा, वह वस्तु हो गया। हम व्यक्तियों को प्रेम भी करते हैं तो 'पजेस' करते हैं, मालिक हो जाते हैं। मालिक व्यक्तियों का कोई नहीं हो सकता, सिर्फ वस्तुओं की मालकियत होती है। पत्नी, पति को पजेस करती है और कहती है मालकियत है। कोई पति कहता है पत्नी को कि मेरी हो, तो फर्नीचर में और पत्नी में कोई भेद नहीं रह जाता। यह उपयोग हो गया, व्यक्ति का सम्मान न हुआ। दूसरे व्यक्ति की निजता का, आत्मा का कोई आदर न हुआ, इसलिये मैं कहता हूं वस्तुओं को ही हम प्रेम करते हैं। यदि व्यक्तियों को भी प्रेम करते हैं तो उनको भी वस्तु बना लेते हैं।

व्यक्तियों का प्रेम मैंने कहा लाख में एक आदमी को उपलब्ध होता है। व्यक्ति के प्रेम का अर्थ है दूसरे का अपना मूल्य है, मेरी उपयोगिता भर ही मूल्य नहीं है उसका। 'युटिलिटेरियन'—इतना ही उसका मूल्य नहीं है, उसका अपना निजी मूल्य है। वह मेरा साधन नहीं है, वह स्वयं अपना साध्य है। एमेनुअल कांट ने कहा है, नीति के परम सूत्रों में एक सूत्र कि अनीति का एक ही अर्थ है, दूसरे व्यक्ति का साधन की तरह उपयोग करना अनैतिक है। और दूसरे व्यक्ति को साध्य मानना नैतिक है। गहरे से गहरा सूत्र है यह कि दूसरा व्यक्ति अपना साध्य है स्वयं। मैं उससे प्रेम करता हूं एक व्यक्ति की भांति, एक वस्तु की भांति नहीं। इसलिए मैं उसका मालिक कभी नहीं हो सकता हूं। इसलिये व्यक्ति के प्रेम को ही हम उपलब्ध नहीं होते।

फिर तीसरा प्रेम है भगवत्प्रेम। वह अस्तित्व का प्रेम है। यों तीन प्रकार के प्रेम हुए 'लव टुवर्डस द एक्जिस्टेंस,' 'लव टुवर्डस दी पर्सन' एण्ड 'लव टुवर्डस दी आब्जेक्ट्स'। वस्तुओं के प्रति प्रेम—जैसे मकान, धन-दौलत, पद, पदवी। व्यक्तियों के प्रति प्रेम—मनुष्य। अस्तित्व के प्रति प्रेम — भगवत्प्रेम, समग्र अस्तित्व को प्रेम। इसको थोड़ा ठीक से देख लेना जरूरी है। जब हम वस्तुओं को प्रेम करते हैं तब हमें सारे जगत में वस्तुएं ही दिखायी पड़ती हैं, कोई परमात्मा दिखायी नहीं पड़ता। क्योंकि जिसे हम प्रेम करते हैं उसे ही हम जानते हैं। प्रेम जानने की आंख है। प्रेम के अपने ढंग हैं जानने के। सच तो यह है कि प्रेम ही 'इन्टीमेट नोइंग' है—आंतरिक, आत्मीय

जानना प्रेम ही है। इसलिए जब हम किसी व्यक्ति को प्रेम करते हैं तभी हम जानते हैं। क्योंकि जब हम प्रेम करते हैं तभी वह व्यक्ति हमारी तरफ खुलता है। जब हम प्रेम करते हैं तब हम उसमें प्रवेश करते हैं। जब हम प्रेम करते हैं तब वह निर्भय होता है। जब हम प्रेम करते हैं तब वह छिपाता नहीं, जब हम प्रेम करते हैं तब वह उघड़ता है, खुलता है, भीतर बुलाता है, आओ अतिथि बनो। ठहराता है हृदय के घर में। जब कोई व्यक्ति प्रेम करता है किसी को, तभी जान पाता है। अगर अस्तित्व को कोई प्रेम करता है तभी जान पाता है परमात्मा को। भगवत्प्रेम का अर्थ है, जो भी है उसके होने के कारण प्रेम है। कुर्सी को हम प्रेम करते हैं क्योंकि उस पर हम बैठते हैं, आराम करते हैं, टूट जायेगी टांग उसकी, कचरे घर में फेंक देंगे। उसका कोई व्यक्तित्व नहीं है, उसे हटा देंगे। जो लोग मनुष्यों को भी इसी भांति प्रेम करते हैं उनका भी यही हाल है। पति को कोढ़ हो जायगा तो पत्नी डायवोर्स दे देगी, अदालत में तलाक कर देगी। टूट गयी टांग कुर्सी की, हटाओ। पत्नी कुरूप हो जायगी, रुग्ण हो जायगी, अस्वस्थ हो जायगी, अंधी हो जायगी, पति तलाक कर देगा। हटाओ। तब तो वस्तु हो गये लोग। जो व्यक्ति सिर्फ वस्तुओं को प्रेम करता है उसके लिए सारा जगत मैटीरियल हो जाता है, वस्तु मात्र हो जाता है। व्यक्ति में भी वस्तु दिखायी पड़ती है फिर भगवत् चैतन्य तो कहीं दिखायी नहीं पड़ सकता।

भगवत् चैतन्य को अनुभव करने के लिए पहले वस्तुओं के प्रेम से व्यक्तियों के प्रेम तक उठना पड़ता है, फिर व्यक्तियों के प्रेम से अस्तित्व के प्रेम तक उठना पड़ता है। जो व्यक्ति व्यक्तियों को प्रेम करता है वह मध्य में आ जाता है। एक तरफ वस्तुओं का जगत होता है दूसरी तरफ भगवान का अस्तित्व होता है। इन दोनों के बीच खड़ा हो जाता है। उसे दोनों तरफ दिखायी पड़ने लगता है– वस्तुओं का संसार और अस्तित्व का लोक! फिर वह आगे बढ़ सकता है।

सुना है मैंने, रामानुज एक गांव से गुजरते हैं। एक आदमी आया और उसने कहा कि मुझे भगवान से मिला दे। मुझे भगवान से प्रेम करा दे। मै भगवत् प्रेम का प्यासा हूं। रामानुज ने कहा, ठहरो, इतनी जल्दी मत करो। तुमसे मैं कुछ पूछूं? तुमने कभी किसी को प्रेम किया है? उसने कहा, कभी नहीं, कभी नहीं। मुझे तो सिर्फ भगवान से प्रेम है। रामानुज ने कहा, कभी किसी को किया हो भूल चूक से? उस आदमी ने कहा, बेकार की बातों में समय क्यों जाया करवा रहे हैं? प्रेम इत्यादि से मैं सदा दूर रहा हूं। मैंने कभी किसी को प्रेम किया ही नहीं। रामानुज ने कहा, फिर तुमसे कहता हूं एक बार, सोचो, किसी को किया हो, किसी पौधे को किया हो, किसी आदमी को किया हो, किसी स्त्री को किया हो, किसी बच्चे को किया हो, किसी

को भी किया हो ? स्वभावतः उस आदमी ने सोचा कि अगर मैं कहूं कि मैंने किसी को प्रेम किया है तो रामानुज कहेंगे कि अयोग्य है तू । इसलिए उसने कहा, मैंने किया ही नहीं । उसने कहा मैं साफ कहता हूं, प्रेम से मैं सदा दूर रहा, मुझे तो भगवत्प्रेम की आकांक्षा है । रामानुज ने कहा, फिर मैं बड़ी मुश्किल में हूं । फिर मैं कुछ भी न कर पाऊंगा क्योंकि अगर तूने किसी को थोड़ा भी प्रेम किया होता, तो उसी प्रेम की किरण के सहारे मैं तुझे भगवत्प्रेम के सूरज तक पहुंचा देता । थोड़ा सा भी तूने किसी में झांका होता प्रेम से तो मैं तुझे पूरे अस्तित्व के द्वार में धक्का दे देता । लेकिन तू कहता है कि तूने प्रेम किया ही नहीं, यह तो ऐसे हुआ कि मैं किसी आदमी से पूछूं कि तूने कभी रोशनी देखी ? मिट्टी का दिया जलता हुआ देखा ? वह कहे नहीं, मुझे तो सूरज दिखा दें, दिया मैंने कभी देखा ही नहीं । पूछता हूं कि कभी तुझे एंकाध किरण छप्पर में से फूटती हुई दिखायी पड़ी होगी, वह कहे, कहां की बातें कर रहे हैं ? किरण वगैरह से अपना कोई संबंध ही नहीं, हम तो सूरज के प्रेमी हैं । तो रामानुज ने कहा, जैसे उस आदमी से मुझे कहना पड़े कि क्षमा कर, तू किरण भी नहीं खोज पाया, सूरज अब तुझे कैसे समझाऊं ? क्योंकि हर किरण सूरज का रास्ता है । व्यक्ति का प्रेम भी भगवत्प्रेम की शुरुआत है । व्यक्ति का प्रेम एक छोटी सी खिड़की है, झरोखा है, जिसमें से हम किसी एक व्यक्ति में से परमात्मा को देखते हैं । वह खिड़की है । तो, रामानुज ने कहा तू एक में भी झांक सका हो तो मैं तुझे सबमें झांकने की कला बता दूं । लेकिन तू कहता है, तूने कभी झांका ही नहीं ।

हम वस्तुओं में जीते हैं, हम व्यक्तियों में झांकते नहीं । क्यों ? क्या बात है ? वस्तुओं के साथ बड़ी सुविधा है, व्यक्तियों के साथ झंझट है । छोटे से व्यक्ति के साथ भी । घर में एक बच्चा पैदा हो जाय, अभी दो साल का बच्चा है, लेकिन वह भी उपद्रव है । व्यक्ति है, वह भी स्वतंत्रता मांगता है । उससे कहो, इस कोने में बैठो तो फिर उस कोने में बिल्कुल नही बैठता है । उससे कहो, बाहर मत जाओ तो बाहर जाता है । उससे कहो, फलां चीज मत छुओ तो छूकर दिखलाता है । मेरी भी आत्मा है, मैं भी हूं, आप ही नहीं हैं । इसलिए आज अमरीका या फ्रांस या इंगलैंड में लोग कहते हैं एक बच्चे की बजाय एक टेलिविजन सेट खरीद लेना बेहतर है । टेलीविजन सेट का जब चाहो बटन दबाओ कि चले । बन्द करो, बन्द हो जाय । 'आन आफ' होता है । व्यक्ति 'आन आफ' नहीं होता । उसको आप नहीं कर सकते 'आन आफ' । एक छोटे से बच्चे को मां दबा दबा के सुला रही है, 'आफ' करना चाह रही है, वह 'आन' हो हो जा रहा है । वह कह रहा है नहीं, अभी नहीं सोना है । छोटा सा बच्चा है । इन्कार करता है कि उसके साथ वस्तु जैसा व्यवहार न किया

जाय। उसके भीतर परमात्मा है। व्यक्ति से प्रेम करने में डर लगता है। क्योंकि व्यक्ति स्वतंत्रता मांगेगा। वस्तुओं से प्रेम करना बड़ा सुविधापूर्ण है, वे स्वतंत्रता नहीं मांगतीं–तिजोरी में बन्द किया, ताला डाला, आराम से सो रहे हैं। रुपये तिजोरी में बन्द हैं। न भागते, न निकलते, न विद्रोह करते, न बगावत करते, न कहते कि आज इरादा नहीं है चलने का हमारा। आज नहीं चलेंगे। नहीं, जब चाहो तब हाजिर होते हैं, जैसे चाहो वैसे हाजिर होते हैं। वस्तुएं गुलाम हो जाती हैं इसलिए हम वस्तुओं को चाहते हैं। जो आदमी भी दूसरे की स्वतंत्रता नहीं चाहता वह आदमी व्यक्ति को प्रेम नहीं कर पायेगा। और जो व्यक्ति को प्रेम नहीं कर पायेगा वह भगवत् प्रेम के झरोखे पर ही नहीं पहुंचा, तो भगवत् प्रेम के आकाश में तो उतरने का उपाय नहीं है।

भगवत्प्रेम का अर्थ है, सारा जगत एक व्यक्तित्व है। 'द होल एक्जिस्टैंस इज पर्सनल'। भगवत् प्रेम का अर्थ है– जगत नहीं है, भगवान है। इसका मतलब समझते हैं? अस्तित्व नहीं है, भगवान है। क्या मतलब हुआ इसका? इसका मतलब हुआ कि हम पूरे अस्तित्व को व्यक्तित्व दे रहे हैं। हम पूरे अस्तित्व को कह रहे हैं कि तू भी है। हम तुझसे बात भी कर सकते हैं। इसलिए, भक्त,–भक्त का अर्थ है, जगत को जिसने व्यक्तित्व दिया। भक्त का अर्थ है, जगत को जिसने भगवान कहा। भक्त का अर्थ है, ऐसा प्रेम से भरा हुआ हृदय जो इस पूरे अस्तित्व से एक व्यक्ति की तरह व्यवहार करता है। सुबह उठता है तो सूरज को हाथ जोड़कर नमस्कार करता है। सूरज को नमस्कार नासमझ नहीं कर रहे हैं, हालांकि बहुत से नासमझ नमस्कार कर रहे हैं। लेकिन जिन्होंने शुरू किया था वे नासमझ नहीं थे। सूरज को नमस्कार उस आदमी ने किया था जिसने सारे अस्तित्व को व्यक्तित्व दे दिया था। फिर सूरज का भी व्यक्तित्व था। तो हमने कहा, सूर्य देवता है। रथ पर सवार है, घोड़ों पर जुता हुआ है, दौड़ता आकाश में है। सुबह होती जागता, सांझ होती अस्त होता है। ये बातें वैज्ञानिक नहीं हैं। ये बातें धार्मिक हैं। ये बातें पदार्थगत नहीं हैं, ये बातें आत्मगत हैं। नदियों को नमस्कार किया, व्यक्तित्व दे दिया। वृक्षों को नमस्कार किया, व्यक्तित्व दे दिया। सारे जगत को व्यक्तित्व दे दिया, कहा कि तुममें भी व्यक्तित्व है। आज भी आप कभी किसी पीपल के पास नमस्कार करके गुजर जाते हैं लेकिन आपने ख्याल नहीं किया होगा कि जो आदमी, आदमियों से वस्तु जैसा व्यवहार करता है उसका पीपल को नमस्कार करना एकदम सरासर झूठ है। पीपल को तो वही नमस्कार कर सकता है जो जानता है कि पीपल भी व्यक्ति है। वह भी परमात्मा का हिस्सा है। उसके पत्ते पत्ते में भी उसी की छाप है। कंकड़ कंकड़ में भी उसी की

पहचान है। जगह जगह वही है, अनेक अनेक रूपों में। चेहरे होंगे भिन्न। वह जो भीतर छिपा है वह भिन्न नहीं है। आंखें होंगी अनेक, लेकिन जो झांकता है उससे, वह एक है। हाथ होंगे अनंत, लेकिन जो स्पर्श करता है उनसे, वह वही है।

गदर के समय, १८५७ में एक संन्यासी, जो पन्द्रह वर्ष से मौन था, नग्न रात में गुजर रहा था। चांदनी रात थी, चांद था आकाश में, वह नाच रहा था, गीत गा रहा था। धन्यवाद दे रहा था चांद को। उसे पता नहीं था कि उसकी मौत करीब है। नाचते हुए वह निकला नदी की तरफ। बीच में अंग्रेज फौज का पड़ाव था। फौजियों ने समझा कि यह कोई जासूस मालूम पड़ता है। तरकीब निकाली है इसने कि नग्न होकर फौजी पड़ाव से गुजर रहा है। उन्होंने पकड़ लिया। और जब उससे पूछताछ की और वह नहीं बोला तब शक और भी पक्का हो गया कि वह जासूस है। बोलता क्यों नहीं? हंसता है, मुस्कुराता है, नाचता है, बोलता नहीं? मैंने इसलिये कहा गीत गाता हुआ कि वाणी से नहीं, ऐसे भी गीत हैं जो प्राणों से गाये जाते हैं। ऐसे भी गीत हैं जो शून्य में उठते और शून्य में ही खो जाते हैं। वह तो मौन था, शब्द से तो चुप था, पर गीत गाता हुआ, नाचता हुआ, अपने समग्र अस्तित्व से, पूर्णिमा के चांद को धन्यवाद दे रहा था। सिपाहियों ने कहा, बोलता क्यों नहीं? मुस्कुराता है बेईमान है। जासूस है। उन्होंने भाला उसकी छाती में भोंक दिया। उस संन्यासी ने संकल्प लिया था कि एक ही शब्द बोलूंगा, आखिरी, अंतिम और मृत्यु के द्वार पर। इस जगत से पार होते हुए धन्यवाद का एक शब्द इस पार बोलकर विदा हो जाऊंगा। कठिन पड़ा होगा उसको कि क्या शब्द बोले। छाती में घुस गया भाला, खून के फव्वारे बरसने लगे। वह जो नाचता था, मरने के करीब पहुंच गया। उस संन्यासी ने कहा 'तत्वमसि श्वेतकेतु'—उपनिषद का महावाक्य, उसने कहा श्वेतकेतु, तू भी वही है। "दैट आर्ट दाऊ"। तू भी वही है। नहीं समझे होंगे वे अंग्रेज सिपाही, लेकिन उस अंग्रेज सिपाही से जिसने उसकी छाती में भोंका भाला, उसने कहा, तू भी वही है। इस खिड़की में से भी वह उसी को देख पाया। इस भाला भोंकती हुई खिड़की में से भी उसी का दर्शन हुआ। भगवत्प्रेम को उपलब्ध हुआ होगा तभी ऐसा हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता।

भगवत्प्रेम का अर्थ है, सारा जगत व्यक्ति है। व्यक्तित्व है जगत के पास अपना, उससे बात की जा सकती है। इसलिए भक्त बोल लेता है उससे। मीरा पागल मालूम पड़ती है दूसरों को, क्योंकि वह बातें कर रही है कृष्ण से। हमें पागल मालूम पड़ेगी क्योंकि हमारे लिए तो वस्तुओं के अतिरिक्त जगत में और कुछ भी नहीं है। व्यक्ति भी नहीं है तो परम व्यक्ति कैसे होगा? लेकिन मीरा बातें कर रही है उससे। सूरदास

उसका हाथ पकड़ के चल रहे हैं–आदान प्रदान हो रहा है, 'डायलॉग' है, चर्चा होती है, प्रश्न-उत्तर हो जाते हैं। पूछा जाता है और प्रतिसंवाद हो जाता है ! जब जीसस सूली पर लटके और उन्होंने ऊपर आंख उठा के कहा–'हे प्रभु, माफ कर देना इन सबको क्योंकि इन्हें पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं ?' तब यह आकाश से नहीं कहा होगा। आकाश से कोई बोलता है ? यह आकाश में उड़ते पक्षियों से नहीं कहा होगा, पक्षियों से कोई बोलता है ? भीड़ खड़ी थी नीचे, उसने भी आकाश की तरफ देखा होगा लेकिन आकाश में चलती हुई सफेद बदलियों के अलावा कुछ भी दिखायी नहीं पड़ा होगा। नीला आकाश खाली और शून्य, लोग हंसे होंगे मन में कि पागल है। लेकिन जीसस के लिए सारा जगत प्रभु है। कह दिया कि क्षमा कर देना इन्हें क्योंकि इन्हें पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं। भगवत्प्रेम हो तो व्यक्ति और परम व्यक्ति के बीच चर्चा हो पाती है, संवाद हो पाता है। आदान प्रदान हो पाता है और उससे मधुर संवाद, उससे मीठा लेन देन, उससे प्रेमपूर्ण व्यवहार और कोई भी नहीं है––प्रार्थना उसका नाम है, भगवत्प्रेम में वह घटित होती है।

भगवत्प्रेम से भरा हुआ व्यक्ति इस लोक में भी आनन्द को उपलब्ध होता है, उस लोक में भी। लेकिन संशय से भरा हुआ, भगवत्प्रेम से रिक्त, इस लोक में भी दुख पाता है उस लोक में भी। दुख हमारा अपना अर्जन है। हमारी अपनी 'अर्निंग' है, दुख पाना हमारी नियति नहीं, हमारी भूल है। दुख पाने के लिए हमारे अतिरिक्त और कोई उत्तरदायी नहीं, और कोई रिस्पोंसिबल नहीं है। दुखी हैं तो कारण है कि संशय को जगह दे दी, दुखी हैं तो कारण है कि व्यक्ति को खोजा नहीं, परम व्यक्ति की तरफ गये नहीं। आनंदित जो होता है उसके ऊपर परमात्मा कोई विशेष कृपा नहीं करता है, वह केवल उपयोग कर लेता है जीवन के अवसर का, और प्रभु के प्रसाद से भर जाता है। गड्ढे हैं, वर्षा होती है तो गड्ढों में पानी भर जाता है और झीलें बन जाती हैं। पर्वत शिखरों पर भी वर्षा होती है लेकिन पर्वत के शिखरों पर झील नहीं बनती, पानी नीचे बहकर गड्ढों में पहुंचकर झील बन जाता है। पर्वत शिखरों पर वर्षा होती है, लेकिन वे पहले से ही भरे हुए हैं। उनमें जगह नहीं है कि पानी भर जाय। झीलें खाली हैं इसलिए पानी भर जाता है।

जो व्यक्ति संशय से भरा है भगवत्प्रेम से खाली है, उसके पास संशय का पहाड़ होता है। ध्यान रखें, बीमारियां अकेली नहीं आतीं, बीमारियां सदा समूह में आती हैं। बीमारियां भीड़ में आती हैं। ऐसा नहीं होता है कि किसी आदमी में एक संशय मिल जाय, जब संशय होता है तो अनेक संशय होते हैं। संशय भी भीड़ में आते हैं। स्वास्थ्य अकेला आता है, बीमारियां भीड़ में आती हैं। श्रद्धा अकेली आती है, संशय बहुवचन

में आते हैं। संशय से भरा हुआ आदमी पहाड़ बन जाता है। उस पर भी प्रभु का प्रसाद बरसता है लेकिन भर नहीं पाता है। संशय-मुक्त झील बन जाता है। गड्ढा—खाली, शून्य, प्रभु के प्रसाद को ग्रहण करने के लिए गर्भ बन जाता है। स्वीकार कर लेता है, इसलिए ध्यान रखें, निरंतर भक्तों ने अगर भगवान को प्रेमी की तरह माना तो उसका कारण है। अगर भक्त इस सीमा तक चले गये कि अपने को स्त्रैण भी मान लिया और प्रभु को पति भी मान लिया तो उसका भी कारण है। और वह कारण है, गड्ढा बनना है, ग्राहक बनना है, रिसेप्टिव बनना है। स्त्री ग्राहक है, रिसेप्टिव है, गर्भ बनती है, स्वीकार करती है। नये को अपने भीतर जन्म देती है, बढ़ाती है। अगर भक्तों को ऐसा लगा कि वह प्रेमिकाएं बन जायं प्रभु की तो उसका कारण है कि वे गड्ढे बन जायं, प्रभु उनमें भर जाय। जो अहंकार के शिखर हैं वे खाली रह जाते हैं और जो विनम्रता के गड्ढे हैं वे भर जाते हैं। प्रभु का प्रसाद प्रतिपल बरस रहा है। उसके प्रसाद की उपलब्धि आनंद है, उसके प्रसाद से वंचित रह जाना संताप है, दुख है। ● ●

★

- परमात्मा की चाह नहीं हो सकती
- भागे हिरन और भटके राम
- पाप कभी पुण्य से नहीं कटते
- धर्म संस्थापनार्थाय....

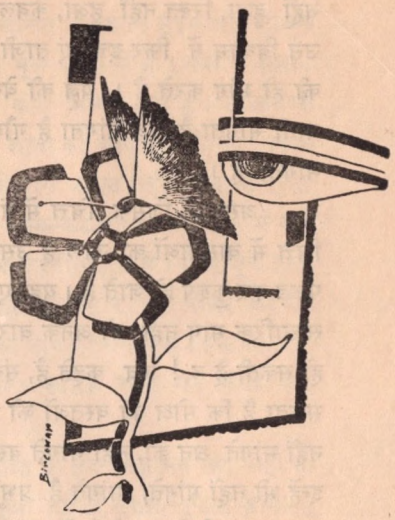

जागते....जागते

परमात्मा की चाह नहीं हो सकती

मन मांगता रहता है संसार को, वासनाएं दौड़ती रहती हैं वस्तुओं की तरफ, शरीर आतुर होता है शरीरों के लिए, आकांक्षाएं विक्षिप्त रहती हैं पूर्ति के लिए। हमारा जीवन आग की लपट है, वासनाएं जलती हैं उन लपटों में—आकांक्षाएं, इच्छाएं जलती हैं। गीला ईंधन जलता है इच्छा का, और सब धुआं-धुआं हो जाता है। इन लपटों में जलते हुए कभी-कभी मन थकता भी है, बेचैन भी होता है, निराश भी, हताश भी होता है। हताशा में, बेचैनी में कभी-कभी प्रभु की तरफ भी मुड़ता है। दौड़ते दौड़ते इच्छाओं के साथ कभी कभी प्रार्थना करने का मन भी हो आता है। दौड़ते दौड़ते वासनाओं के साथ कभी कभी प्रभु की सन्निधि में आंख बन्द कर ध्यान में डूब जाने की कामना भी जन्म लेती है। बाजार की भीड़-भाड़ से हट कर कभी मंदिर के एकांत, मस्जिद के एकांत कोने में डूब जाने का ख्याल भी उठता है। लेकिन वासनाओं से थका हुआ आदमी मंदिर में बैठकर पुनः वासनाओं की मांग शुरू कर देता है। बाजार से थका आदमी मंदिर में बैठकर पुनः बाजार का विचार शुरू कर देता है। क्योंकि बाजार से वह थका है, जागा नहीं; वासना से थका है, जागा नहीं। इच्छाओं से मुक्त

नहीं हुआ, रिक्त नहीं हुआ, केवल इच्छाओं से विश्राम के लिए मंदिर चला आया। उस विश्राम में फिर इच्छाएं ताजी हो जाती हैं। प्रार्थना में जुड़े हुए हाथ भी संसार की ही मांग करते हैं। यज्ञ की वेदी के आसपास घूमता हुआ साधक, या याचक भी पत्नी मांगता है, पुत्र मांगता है गौएं मांगता है, धन मांगता है, यश, राज्य, साम्राज्य मांगता है।

असल में जिसके चित्त में संसार है उसकी प्रार्थना में संसार ही होगा। जिसके चित्त में वासनाओं का जाल है उसके प्रार्थना के स्वर भी उन्हीं वासनाओं के धुएं को पकड़ कर कुरूप हो जाते हैं। यहां एक बात और समझ लेनी जरूरी है कि जब कहते हैं, सांसारिक मांग नहीं, तो अनेक बार मन में ख्याल उठता है तो गैर सांसारिक मांग तो हो सकती है न! जब कहते हैं, संसार की वस्तुओं की कोई चाह नहीं, तो ख्याल उठ सकता है कि मोक्ष की वस्तुओं की चाह तो हो सकती है न! नहीं मांगते संसार को, नहीं मांगते धन को, नहीं मांगते वस्तुओं को। मांगते हैं शांति को, आनंद को। छोड़ें, इन्हें भी नहीं मांगते, मांगते हैं प्रभु के दर्शन को, मुक्ति को, ज्ञान को। यहीं वह बात समझ लेनी जरूरी है कि संसारिक मांग तो सांसारिक होती है, मांग मात्र सांसारिक होती है। वासनाएं सांसारिक हैं यह तो ठीक है, लेकिन वासना मात्र सांसारिक है, यह भी स्मरण रख लें। शांति की कोई मांग नहीं होती, अशांति से मुक्ति होती है। और शांति परिणाम होती है। शांति को मांगा नहीं जा सकता, सिर्फ अशांति को छोड़ा जा सकता है और शांति मिलती है। और जो शांति को मांगता है वह कभी शांत नहीं होता है क्योंकि उसकी शांति की मांग, सिर्फ एक और अशांति का जन्म होता है। इसलिए साधारणतया अशांत आदमी इतना अशांत नहीं होता जितना शांति की चेष्टा में लगा हुआ आदमी अशांत हो जाता है। अशांत तो होता ही है, यह शांति की चेष्टा और अशान्त करती है। यह भी मांग है, यह भी इच्छा है, यह भी वासना है। मोक्ष मांगा नहीं जा सकता। क्योंकि जबतक मोक्ष की मांग है, जब तक मांग है, तबतक बंधन है। फिर बंधन और मोक्ष का मिलन कैसा? हां, बन्धन न रहे तो जो रह जाता है, वह मोक्ष है। हम परमात्मा को चाह नहीं सकते, क्योंकि चाह ही तो परमात्मा और हमारे बीच बाधा है। ऐसा नहीं कि धन की चाह बाधा है, चाह ही 'डिजायर एज सच' बाधा है। ऐसा नहीं कि इस चीज की चाह बाधा है और इस चीज की चाह बाधा नहीं है,—ना, चाह ही बाधा है। क्योंकि चाह ही तनाव है, चाह ही असंतोष है। चाह ही, जो नहीं है उसकी कामना है। जो है उसमें तृप्ति नहीं। अगर ठीक से कहें तो सांसारिक चाह कहना ठीक नहीं, चाह का नाम संसार है। वासना ही संसार है, सांसारिक वासना कहना ठीक नहीं। लेकिन हम भाषा में भूलें करते हैं। सामान्य

करते हैं तब तो कठिनाई नहीं आती, चल जाता है लेकिन जब इतने सूक्ष्म और नाजुक मसलों में भूले होती हैं तो कठिनाई हो जाती है। भूले भाषा में हैं। क्योंकि अज्ञानी भाषा निर्मित करता है। और ज्ञानी की अबतक कोई भाषा नहीं है। उसको भी अज्ञानी की भाषा का ही उपयोग करना पड़ता है। ज्ञानी की भाषा हो भी नहीं सकती क्योंकि ज्ञान मौन है, मुखर नहीं। मूक है। ज्ञान के पास जबान नहीं, ज्ञान 'साइलेंस' है। शून्य है। ज्ञान के पास शब्द नहीं। शब्द उठने तक की भी अशांति ज्ञान में नहीं है। इसलिए अज्ञानी की भाषा ही ज्ञानी को उपयोग करनी पड़ती है। फिर भूलें होती हैं। जैसे यह भूल निरंतर हो जाती है। हम कहते हैं संसार की चीजों को मत चाहो। कहना चाहिए, चाहो ही मत, क्योंकि चाह का नाम ही संसार है। हम कहते हैं, मन को शांत करो, ठीक नहीं है यह कहना। क्योंकि शांत मन जैसी कोई चीज होती नहीं।

अशांति का नाम ही मन है। जब तक अशांति है तब तक मन है; नहीं तो मन भी नहीं। जहां शांति हुई वहां मन तिरोहित हुआ। ऐसा समझें—तूफान आया है लहरों में सागर की। फिर हम कहते हैं, तूफान शांत हो गया। जब तूफान शांत हो जाता है तो क्या सागर के तट पर खोजने से शांत तूफान मिल सकेगा? हम कहते हैं तूफान शांत हो गया, तो पूछा जा सकता है शांत तूफान कहां है? शांत तूफान होता ही नहीं। तूफान का नाम ही अशांति है। शांत तूफान,--मतलब तूफान मर गया, अब तूफान नहीं है। शांत मन का अर्थ, मन मर गया, अब मन नहीं है। चाह के छूटने का अर्थ, संसार गया, अब नहीं है। जहां चाह नहीं, वहां परमात्मा है। जहां चाह है वहां संसार है। इसलिए परमात्मा की चाह नहीं हो सकती और अनचाहा संसार नहीं हो सकता। ये दो बातें नहीं हो सकतीं।

अज्ञान से ऊबे, थके, घबराये हुए लोग विश्राम के लिए विराम के लिए धर्म, पूजा, प्रार्थना, ध्यान, उपासना में आते हैं। लेकिन मांगें उनकी साथ चली आती हैं। चित्त उनका साथ चला आता है। एक आदमी दूकान से उठा और मंदिर में गया, जूते बाहर छोड़ देता, मन को भीतर ले जाता है। जूते भीतर ले जाय तो बहुत हर्ज नहीं है। मन को बाहर छोड़ जाय। जूते से मंदिर अपवित्र नहीं होगा। जूते में ऐसा कुछ भी अपवित्र नहीं है, मगर मन भीतर ले जाता है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जूते भीतर ले जाना। घर से चलता है तो स्नान कर लेता है। शरीर धो लेता है। मगर मन? मन वैसा का वैसा बासा, पसीने की बदबू से भरा, दिन भर की वासनाओं की गंध से पूरी तरह लबालब, दिन भर के धूल कणों से बुरी रह आच्छादित! उसी गंदे मन को लेकर वह मंदिर में प्रवेश कर जाता है। फिर जब हाथ जोड़ता है तो हाथ तो धुले

होते लेकिन जुड़े हुए हाथों के पीछे मन गैर धुला होता है। आंखें तो परमात्मा को देखने के लिए उठती हैं लेकिन भीतर से मन परमात्मा को देखने के लिए नहीं उठता। वहां फिर वस्तुओं की कामना और वासना लौट आती है। हाथ जुड़ते हैं परमात्मा से कुछ मांगने के लिए और जब भी हाथ कुछ मांगने के लिए जुड़ते हैं तभी प्रार्थना का अंत हो जाता है। मांग और प्रार्थना का कोई मेल नहीं। फिर प्रार्थना क्या है? प्रार्थना सिर्फ धन्यवाद है, मांग नहीं। 'डिमाण्ड' नहीं, 'थैंक्सगिविंग'। सिर्फ धन्यवाद। जो मिला है वह इतना काफी है कि उसके लिए मंदिर धन्यवाद देने जाना चाहिए। धार्मिक आदमी वही है जो मंदिर धन्यवाद देने जाता है। अधार्मिक वह नहीं जो मंदिर नहीं जाता, वह तो अधार्मिक है ही, अधार्मिक असली वह है जो मंदिर मांगने जाता है।

छोड़ें वासनाओं को, छोड़ें भविष्य को, छोड़ें सपनों को, छोड़ें अन्ततः अपने को, ऐसे जियें जैसे प्रभु ही आपके भीतर से जीता है। ऐसे जियें जैसे चारों और प्रभु ही जीता है, ऐसे करें कृत्य, जैसे प्रभु ही करवाता है। जैसे प्रत्येक करने के पीछे प्रभु ही फल को लेने, हाथ फैलाके खड़ा है। तब ज्ञान घटित होता है। ज्ञान परम मुक्ति है, 'द अल्टीमेट फ्रीडम'। अज्ञान बन्धन है, ज्ञान मुक्ति है, अज्ञान रुग्णता है, ज्ञान स्वास्थ्य है।

यह स्वास्थ्य शब्द बहुत अद्‌भुत है। दुनिया की किसी भाषा में उसका ठीक-ठीक अनुवाद नहीं है। अंग्रेजी में हेल्थ है, और पश्चिम की सभी भाषाओं में हेल्थ से मिलते जुलते शब्द हैं। हेल्थ का मतलब होता है हीलिंग, घाव का भरना। शारीरिक शब्द है, गहरे नहीं जाता। स्वास्थ्य बहुत गहरा शब्द है। उसका अर्थ हेल्थ ही नहीं होता। हेल्थ तो होता ही है, घाव का भरना तो होता ही है स्वास्थ्य का अर्थ है स्वयं में स्थित हो जाना। 'टू बी इन वनसेल्फ'। आध्यात्मिक बीमारी से संबंधित है स्वास्थ्य। स्वास्थ्य का अर्थ है स्वयं में ठहर जाना। इंच भर भी न हिलना, पलभर भी न कंपना। जरा सा भी कंपन न रह जाय भीतर, वैवरिंग जरा भी न रह जाय बस, तब स्वास्थ्य फलित होता है।

वैवरिंग क्यों, कंपन क्यों है, कभी आपने ख्याल किया? जितनी तेज इच्छा होगी उतना ही कंपन हो जाता है भीतर। इच्छा नहीं होती, कंपन खो जाता है। इच्छा ही कंपन है। आप कंपते कब हैं? दिया जल रहा है। कंपन कब है? जब हवा का झोंका लगता है। हवा का झोंका न लगे तो दिया निष्कंप हो जाता है, ठहर जाता है, स्वस्थ हो जाता है। अपनी जगह हो जाता है। जहां होना चाहिए वहां हो जाता है। हवा के धक्के लगते हैं तो ज्योति वहां हट जाती है जहां नहीं होनी चाहिए। जगह से च्युत हो

जाती है, रुग्ण हो जाती है, कंपित हो जाती है। और जब कंपित होती है तब बुझने का, मौत का डर पैदा हो जाता है। जोर की हवा आती है तो ज्योति बुझने - बुझने को, मरने-मरने को होने लगती है। ठीक ऐसे ही इच्छाओं की तीव्र हवाओं में, वासना के तीव्र ज्वर में कंपती है चेतना! इसलिए यह भी ख्याल में ले लें—जो वासना से मुक्त हुआ, वह मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है। दिये की लौ हवा के धक्कों से मुक्त हुई, फिर उसे क्या मौत का डर ? मौत का डर खो गया। लेकिन जब तूफान की हवा बहती है तो दिया कंपता और डरता है कि मरा अब मरा। ठीक हमारी अज्ञान की अवस्था में ऐसे ही चित्त होता है। एक कंपन छूटता है तो दूसरा कंपन शुरू होता है। एक वासना हटती है तो दूसरा झोंका वासना का आता है। कहीं कोई विराम नहीं। कहीं कोई विश्राम नहीं। वासना का कंपन ही 'स्प्रीच्युअल डिसीज,' आध्यात्मिक रुग्णता है ! कंपने का अर्थ ही है कि स्थिति में नहीं। इसलिए कहा जाता है कि ज्ञान परम मुक्ति है क्योंकि ज्ञान परम स्वास्थ्य है। वह कैसे होगा उपलब्ध ? वासना से जो मुक्त हो जाता है, मांग से, चाह से, जो मुक्त हो जाता है वही ज्ञान में प्रतिष्ठित हो जाता है।

★

भागे हिरन और भटके राम

हमारा अनुभव यह है कि हमने जहां जहां कामना के फूल को तोड़ना चाहा वहीं दुख का कांटा हाथ में लगा। जहां जहां कामना के फूल के लिए हाथ बढ़ाया, फूल दिखायी पड़ा जब तक हाथ में न आया, जब हाथ में आया तो रह गया सिर्फ लुहू, खून। कांटा चुभा, फूल तिरोहित हो गया। लेकिन मनुष्य अद्‌भुत है। उसका सबसे अद्‌भुत होना इस बात में है कि वह अनुभव से सीखता नहीं। शायद ऐसा कहना भी ठीक नहीं। कहना चाहिए मनुष्य अनुभव से सदा गलत सीखता है। उसने हाथ बढ़ाया और फूल हाथ में न आया, कांटा हाथ में आया तो वह यही सीखता है कि मैंने गलत फूल की तरफ हाथ बढ़ा दिया। अब मैं ठीक फूल की तरफ हाथ बढ़ाऊंगा। यह नहीं सीखता कि फूल की तरफ हाथ बढ़ाना ही गलत है। साधारण आदमियों की बात हम छोड़ दें। स्वयं राम अपनी कुटिया के बाहर बैठे हैं और एक स्वर्ण मृग दिखायी पड़ जाता है। स्वर्ण मृग, सोने का हिरण होता नहीं। पर जो नहीं होता वह दिखायी पड़ सकता है। जिन्दगी में बहुत कुछ दिखायी पड़ता है जो है ही नहीं। परन्तु जो है वह दिखायी नहीं पड़ता है। स्वर्ण मृग दिखायी पड़ता है, राम उठा लेते हैं धनुष वाण।

सीता कहती हैं जाओ, ले आओ इसका चर्म। राम निकल पड़ते हैं स्वर्ण मृग को मारने। यह कथा बड़ी मीठी है। सोने का मृग भी कहीं होता है? लेकिन आपको कहीं दिखायी पड़ जाय तो रुकना मुश्किल हो जाय। असली मृग हो तो रुका भी जाय, सोने का मृग दिखायी पड़ जाय तो रुकना मुश्किल हो जायगा। हम सभी सोने के मृग के पीछे हो भटकते हैं। एक अर्थ में हम सबके भीतर का राम सोने के मृग के लिए ही तो भटकता है, और हम सबके भीतर की सीता भी उकसाती है, जाओ, सोने के मृग को ले आओ। हम सब के भीतर की कामना, हम सब के भीतर की वासना, हम सबके भीतर की 'डिज़ायरिंग' कहती है भीतर की शक्ति को, उस ऊर्जा को, उस राम को, कि जाओ तुम। "इच्छा है सीता, शक्ति है राम"। कहती है जाओ, स्वर्ण मृग को ले आओ। राम दौड़ते फिरते हैं। स्वर्ण मृग हाथ में न आये तो लगता है कि अपनी कोशिश में कुछ कमी रह गयी। और तेजी से दौड़ो, स्वर्ण मृग को तीर मारा ताकि वह गिर जाय, न ठीक निशाना लगे तो लगता है कि विषधर तीर बनाओ; लेकिन यह ख्याल में नहीं आता कि स्वर्ण का मृग होता ही नहीं!

कामना के फूल आकाश कुसुम हैं, होते नहीं। जैसे धरती पर तारे नहीं होते वैसे आकाश में फूल नहीं होते। कामना के कुसुम या तो धरती के तारे हैं या आकाश के फूल। सकाम हमारी दौड़ है। बार बार थक कर गिर गिर कर भी, बार बार काँटों से उलझ कर भी फूल की आकांक्षा नहीं जाती। दुख हाथ लगता है। लेकिन कभी हम दूसरा प्रयोग करने को नहीं सोचते। वह दूसरा प्रयोग है निष्काम भाव का। बड़ा मजा है,निष्काम भाव से कांटा भी पकड़ा जाय तो पकड़ने पर पता चलता है कि फूल हो गया। ऐसा ही 'पेराडोक्स' है, ऐसा ही जिन्दगी का नियम है। ऐसा होता है। आपने एक अनुभव तो करके देख लिया। फूल को पकड़ा और कांटा हाथ में आया, यह आप देख चुके। और अगर ऐसा हो सकता है कि फूल पकड़ें और कांटा हाथ में आये तो उल्टा क्यों नहीं हो सकता है कि कांटा पकड़ें और फूल हाथ में आ जाय? क्यों नहीं हो सकता ऐसा? अगर यह हो सकता है तो इससे उल्टा होने में कौन सी कठिनाई है? हां, जो जानते हैं वे तो कहते हैं, होता है। एक प्रयोग करके देखें।। चौबीस घण्टे में एकाध काम निष्काम करके देखें, सब तो करने मुश्किल हैं–सिर्फ एकाध काम। चौबीस घण्टे में एक काम सिर्फ निष्काम करके देखें। छोटा-सा ही काम, ऐसा कि जिसका कोई बहुत अर्थ नहीं होता। रास्ते पर किसी को बिल्कुल निष्काम नमस्कार करके देखें। उसमें तो कुछ खर्च नहीं होता? लेकिन लोग निष्काम नमस्कार तक नहीं कर सकते। नमस्कार तक में कामना होती है। मिनिस्टर है तो नमस्कार हो जाता है। पता नहीं कब काम पड़ जाय? मिनिस्टर नहीं रहा अब,

एक्स हो गया, तो कोई उसकी तरफ देखता ही नहीं। स्वयं मिनिस्टर ही अब नमस्कार करता है। वह इस लिए नमस्कार करता है कि फिर कभी काम पड़ सकता है। कामना के बिना नमस्कार तक नहीं रहा। कम से कम नमस्कार तो बिना कामना के करके देखें। आप हैरान हो जायेंगे, अगर साधारण से जन को भी, राहगीर को भी, अपरिचित को भी, भिखारी की भी हाथ जोड़कर नमस्कार कर लें, बिना कामना के, तो भीतर तत्काल पायेंगे कि आनंद की एक झलक आ गयी। सिर्फ नमस्कार ही, कोई बड़ा कृत्य नहीं, कोई बड़ी 'डीड' नहीं। कुछ नहीं, सिर्फ हाथ जोड़ें निष्काम और पायेंगे कि एक लहर शांति की दौड़ गयी। एक अनुग्रह, एक ईश्वर की कृपा भीतर दौड़ गयी। और अगर अनुभव आने लगे तो फिर बड़े काम में भी निष्काम होने की भावना जगने लगेगी। जब इतने छोटे काम में इतनी आनन्द की पुलक पैदा होती है, तो जितना बड़ा काम होगा उतनी बड़ी आनन्द की पुलक पैदा होगी। फिर तो धीरे धीरे पूरा जीवन निष्काम होता चला जायगा।

★

पाप कर्म पुण्य से नहीं कटता

यह प्रश्न सनातन है, सदा ही पूछा जाता रहा है। बहुत हैं पाप आदमी के, अनंत हैं, अनंत जन्मों के हैं। गहन है, लंबी है श्रृंखला पाप की। इस लंबी पाप की श्रृंखला को क्या ज्ञान का एक अनुभव तोड़ पायेगा? इतने बड़े विराट पाप को क्या ज्ञान की एक किरण नष्ट कर पायेगी? जो नीतिशास्त्री हैं, नीतिशास्त्री अर्थात् जिन्हें धर्म का कोई भी पता नहीं, जिनका चिंतन पाप और पुण्य के ऊपर कभी गया नहीं, वे कहेंगे, जितना किया पाप, उतना ही पुण्य करना पड़ा है। एक एक पाप को एक एक पुण्य से काटना पड़ेगा। तब बैलेंस, तब ऋण-धन बराबर होगा। तब हानि -लाभ बराबर होगा और व्यक्ति मुक्त होगा। जो नीतिशास्त्री है 'मोरालिस्ट' हैं, जिन्हें आत्म अनुभव का कुछ भी पता नहीं जिन्हें 'बीइंग' का कुछ भी पता नहीं, जिन्हें आत्मा का कुछ भी पता नही, जो सिर्फ 'डीड' का, कर्म का हिसाब किताब रखते हैं, वे यही कहेंगे, एक एक पाप के लिए एक एक पुण्य साधना पड़ेगा। अगर अनंत पाप हैं तो अनंत पुण्यों के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं। लेकिन मैं कहता हूं तब मुक्ति असंभव है।

दो कारण से असंभव है-- एक तो इसलिए असंभव है कि अनंत श्रृंखला है पाप की और अनंत पुण्यों की श्रृंखला करनी पड़ेगी। इसलिए भी असंभव है कि कितने ही कोई पुण्य करे, पुण्य करने के लिए भी पाप करने पड़ते हैं। एक आदमी धर्मशाला

बनाये, तो पहले ब्लैक मार्केट करे। ब्लैक मार्केट के बिना धर्मशाला नहीं बन सकती। एक आदमी मंदिर बनाये तो पहले लोगों की गर्दनें काटे। गर्दनें काटे बिना मंदिर की नींव का पत्थर नहीं पड़ता। एक आदमी पुण्य करने के लिए कम से कम जियेगा तो सही, और जीने में ही हजार पाप हो जाते हैं। चलेगा तो, हिंसा होगी। उठेगा तो, हिंसा होगी, बैठेगा तो हिंसा होगी। श्वास भी लेगा तो ? वैज्ञानिक कहते हैं एक श्वास में कोई एक लाख छोटे जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। बोलेगा तो; एक बार ओठ ओठ से मिला और खुला, करीब एक लाख सूक्ष्म जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। किसी का चुम्बन आप लेते हैं, लाखों जीवाणुओं का आदान प्रदान हो जाता है। कई मर जाते हैं बेचारे। जीने में ही पाप हो जायगा। पुण्य करने के लिए ही पाप हो जायगा। तब तो यह अनंत वर्तुल है, 'विसियस सर्किल' है, दुष्ट चक्र है, इसके बाहर आप जा नहीं सकते। अगर पुण्य से पाप को काटने की कोशिश की तो पुण्य करने में पाप हो जायगा। फिर उस पाप को काटने की पुण्य से कोशिश की, फिर उस पुण्य करने में पाप हो जायगा। हर बार पाप को काटना पड़ेगा, हर बार पुण्य से काटेंगे, और पुण्य नये पाप करवा जायगा। इस वर्तुल का कभी अंत नहीं होगा। इसलिए नैतिक व्यक्ति कभी मुक्त नहीं हो सकता। नैतिक दृष्टि कभी मुक्ति तक नहीं जा सकती। नैतिक दृष्टि तो चक्कर में ही पड़ी रह जाती है।

एक बहुत ही और दृष्टि की बात। गहरी दृष्टि की बात जो भी जानते हैं, वह करेंगे। वे कहेंगे अगर आप सब पापियों में भी सबसे बड़े पापी हैं, 'दी ग्रेटेस्ट सिनर' अस्तित्व में जितने पापी हैं, उनमें सबसे बड़े पापी हैं तो भी ज्ञान की एक घटना आपके सब पापों को क्षीण कर देगी। क्या मतलब हुआ इसका ? इसका मतलब यही हुआ कि पाप की कोई सघनता नहीं होती, पाप की कोई 'डेंसिटी' नहीं होती। पाप है अंधेरे की तरह। एक घर में अंधेरा है हजार साल से, दरवाजे बन्द और ताले बन्द। हजार साल पुराना अंधेरा है और आप दिया जलायेंगे, तो अंधेरा कहेगा क्या, कि इतने से काम नहीं चलेगा ? आप हजार साल तक दिये जलायें तब मैं कटूंगा। नहीं, आपने दिया जलाया कि हजार साल पुराना अंधेरा गया। वह यह नहीं कह सकता है कि मैं हजार साल पुराना हूं। वह यह भी नहीं कह सकता है कि हजार सालों से मैं बहुत सघन, 'कंडेन्स्ड' हो गया हूं इसलिए दिये की इतनी छोटी सी ज्योति मुझे नहीं तोड़ सकती। हजार साल पुराना अंधेरा और एक रात का पुराना अंधेरा एक ही 'डेंसिटी' के होते है या कहना चाहिए कि 'नो डेंसिटी' के होते हैं, उनमें कोई सघनता नहीं होती। अंधेरे की पर्तें नहीं होतीं क्योंकि अंधेरे का कोई अस्तित्व नहीं होता। बस इधर आपने जलायी तीली, अंधेरा गया--अभी और यहीं। हां, अगर कोई अंधेरे

को पोटलियों में बांध कर फेंकना चाहे तो फिर 'मोरालिस्ट' का काम कर रहा है, नैतिकवादी का। वह कहता है जितना अंधेरा है बांधो पोटली में, बाहर फेंक कर आओ। फेंकते रहो टोकरी बाहर और भीतर, अंधेरा अपनी जगह रहेगा। आप चुक जाओगे, अंधेरा नहीं चुकेगा। ध्यान रहे, पाप को पुण्य से नहीं काटा जा सकता। क्योंकि पुण्य भी सूक्ष्म पाप के बिना नही हो सकता। पाप को तो सिर्फ ज्ञान से काटा जा सकता है क्योंकि ज्ञान, बिना पाप के हो सकता है।

ज्ञान कोई कृत्य नहीं है कि जिसमें पाप करना पड़े, ज्ञान अनुभव है। कर्म बाहर है, ज्ञान भीतर है। ज्ञान तो ज्योति के जलने जैसा है। जला कि सब अंधेरा गया। फिर तो ऐसा भी पता नहीं चलता कि मैंने कभी पाप किये थे; क्योंकि जब मैं ही चला जाय तो सब खाते बही भी उसी के साथ चले जाते हैं, फिर आदमी अपने अतीत से ऐसे ही मुक्त हो जाता है जैसे सुबह सपने से मुक्त हो जाती है।

कभी आपने ऐसा सवाल नहीं उठाया कि जब सुबह हम उठते हैं, रात भर का सपना देखकर और जरा सा किसी ने हिला के उठा दिया, तो इतने से हिलाने से रात भर का सपना कैसे टूट सकता है? जरा सा किसी ने हिलाया, पलक खुली, सपना गया! फिर आप यह नहीं कहते कि रात भर इतना सपना देखा, अब सपने के विरोध में इतना ही यथार्थ देखूंगा तब सपना मिटेगा। बस सपना टूट जाता है! पाप सपने की भांति है। ज्ञान की जो सर्वोच्च घोषणा है वह यह है कि पाप स्वप्न की भांति है, पुण्य भी स्वप्न की भांति है। और सपने सपने से नहीं काटे जाते। सपने सपने से काटेंगे तो भी सपना देखना जारी रखना पड़ेगा। सपने सपने से नहीं कटते क्योंकि सपनों को सपने से काटने में सपने बढ़ते हैं। और सपने यथार्थ से भी नही काटे जा सकते क्योंकि जो झूठ है वह सच से काटा नहीं जा सकता। जो असत्य है वह सत्य से काटा नहीं जा सकता। वह इतना भी तो नहीं है कि काटा जा सके। वह सत्य की मौजूदगी पर नहीं पाया जाता है, काटने को भी नहीं पाया जाता है। इसलिए कृष्ण भी कहते हैं कि कितना ही बड़ा पापी हो तू, सबसे बड़ा पापी हो तू, तो भी मैं कहता हूं अर्जुन, कि ज्ञान की एक किरण तेरे सारे पापों को सपनों की भांति बहा ले जायगी। सुबह जैसे कोई जाग जाता है वैसे ही रात समाप्त, सपने समाप्त, सब समाप्त! जागे हुए आदमी को सपनों से कुछ लेना देना नही रह जाता।

इसलिए जब पहली बार भारत के ग्रंथ पश्चिम में अनुवादित हुए तो उन्होंने कहा, यह ग्रंथ तो 'इम्मारल' मालूम होता है। अनैतिक मालूम होता है। खुद शोपेनहार को चिन्ता हुई। मनीषी था, चिन्तक था गहरा, उसको खुद चिन्ता हुई

कि ये किस तरह की बातें हैं । ये कहते हैं, एक क्षण में कट जायेंगे पाप । क्रिश्चियनिटी कभी भी नहीं समझ पायी इस बात को, ईसाइयत कभी नहीं समझ पायी इस बात को कि एक क्षण में पाप कैसे तिरोहित होंगे ? क्योंकि ईसाइयत ने पाप को बहुत भारी मूल्य दे दिया, बहुत गंभीरता से ले लिया । सपने की तरह नहीं, असलियत की तरह ले लिया । ईसाइयत के ऊपर पाप का भार बहुत गहरा है, 'बर्डन' बहुत गहरा है । 'ओरिजनल सिन', एक एक आदमी का पाप तो है ही, पर उससे पहले आदमी ने जो पाप किया था वह भी सब आदमियों की छाती पर है । उसको काटना बहुत मुश्किल है । इसलिए क्रिश्चियनिटी 'गिल्ट-रिडन' हो गयी, अपराध का भाव भारी हो गया । और पाप का कोई छुटकारा दिखायी नहीं पड़ता । कितना ही पुण्य करो उस से छुटकारा नहीं दिखायी पड़ता । इसलिए ईसाइयत गहरे में जाकर रुग्ण हो गयी । जीसस को नहीं था यह ख्याल, लेकिन ईसाइयत जीसस को नहीं समझ पायी, जैसा कि सदा होता है । हिंदू कृष्ण को नहीं समझ पाये, जैन महावीर को नहीं समझ पाये, न समझने वाले, समझने का जब दावा करते हैं तो उपद्रव शुरू हो जाता है । जीसस ने कहा - "सीक यी फर्स्ट द किंगडम आफ गाड एन्ड आल एल्स शैल बी एडेड अन टू यू" । जीसस ने कहा, सिर्फ प्रभु के राज्य को खोज लो और शेष सब तुम्हें मिल जायगा । वही जो कृष्ण कह रहे हैं कि सिर्फ प्रकाश की किरण को खोज लो और शेष सब, जो तुम छोड़ना चाहते हो छूट जायगा, जो तुम पाना चाहते हो मिल जायगा । भारतीय चिन्तन 'इम्मारल' नहीं है 'ए मारल' है । अनैतिक नहीं है, अतिनैतिक है, 'सुपर मारल' है । नीति के पार जाता है । पुण्य-पाप के पार चला जाता है ।

★

धर्म संस्थापनार्थाय....

धर्म नष्ट कभी नहीं होता, कुछ भी नष्ट नहीं होता । धर्म तो नष्ट होगा ही नहीं, लेकिन लुप्त होता है । लुप्त होने के अर्थो में नष्ट होता है । इसलिये उसकी पुनरसंस्थापना की निरंतर जरूरत पड़ जाती है । उसकी पुनरप्रतिष्ठा की निरंतर जरूरत पड़ जाती है । जैसे धर्म कभी अस्तित्वहीन नहीं होता वैसे ही अधर्म कभी अस्तित्ववान नहीं होता । लेकिन बार बार फिर भी उस अस्तित्वहीन अधर्म को हटाने की जरूरत पड़ जाती है । इसे थोड़ा समझें । क्योंकि बड़ी उल्टी बात मालूम पड़ेगी । जो धर्म कभी नष्ट नहीं होता उसकी संस्थापना की क्या जरूरत है? और जो अधर्म कभी होता ही नहीं, उसके मिटाने की भी क्या जरूरत है । लेकिन ऐसा है ।

अंधेरा है– अंधेरा है नहीं । रोज मिटाना पड़ता है, और है बिल्कुल नहीं ।

अंधेरे का कोई अस्तित्व नहीं है। अंधेरा 'एक्जीस्टेंशियल' नहीं है, अंधेरा कोई चीज नहीं है। फिर भी है। यह मजा है, यह पैराडाक्स है जिन्दगी का कि अंधेरा है नहीं, फिर भी है। काफी है, घना होता है, डरा देता है, प्राण कंपा देता है और है नहीं। अंधेरा सिर्फ प्रकाश की अनुपस्थिति है। सिर्फ 'एब्सेंस' है। जैसे कमरे में आप थे और बाहर चले गये तो हम कहते हैं, अब आप कमरे में नहीं हैं। अंधेरा इसी तरह है। अंधेरे का मतलब इतना ही है कि प्रकाश नहीं है। इसलिए अंधेरे को तलवार से काट नहीं सकते, अंधेरे को गठरी में बांध के फेंक नहीं सकते। दुश्मन के घर में जाकर अंधेरा डाल नहीं सकते। अंधेरा घर के बाहर निकालना हो तो धक्का देकर निकाल नहीं सकते। 'सब्सटेंशियल' नहीं है, अंधेरे में कोई 'सब्स्टेंस' नहीं है। कण्टेंट नहीं है, अंधेरे में कोई वस्तु नहीं है। अंधेरा अवस्तु है। 'नो थिंग, नथिंग।' अंधेरे में कुछ है नहीं। लेकिन फिर भी है। इतना तो है कि डरा दे। इतना तो है कि कंपा दे, इतना तो है कि गड्ढे में गिरा दे। इतना तो है, हाथ पैर टूट जायं। यह बड़ी मुश्किल की बात है कि जो नहीं है उसके होने से आदमी गड्ढे में गिर जाता है। यह कहना नहीं चाहिए क्योंकि एब्सर्ड है। जो नहीं है उसके होने से आदमी गड्ढे में गिर जाता है। जो नहीं है उसके होने से हाथ पैर टूट जाता है, जो नहीं है उसके होने से चोर चोरी कर ले जाते हैं, जो नहीं है उसके होने से हत्यारा हत्या कर लेता है। नहीं तो है बिल्कुल, वैज्ञानिक भी कहते हैं, नहीं है। उसका कोई अस्तित्व नहीं है। अस्तित्व है प्रकाश का। जिसका अस्तित्व हो उसको रोज लाना पड़ रहा है। रोज सांझ दिया जलाओ, न जलाओ तो अंधेरा खड़ा है। तो कृष्ण कहते हैं, संस्थापनार्थ—धर्म की संस्थापना के लिए, दिये को जलाने के लिए, अधर्म के अंधेरे को हटाने के लिए—अधर्म जो नहीं है, धर्म जो सदा है।

सूरज स्रोत है प्रकाश का। अंधेरे का स्रोत पता है, कहां है? कहीं भी नहीं है। सूरज से आ जाती है रोशनी। अंधेरा कहां से आता है? 'फ्रोम नो व्हेयर', कोई 'सोर्स' नहीं है। कभी आपने पूछा, अंधेरा कहां से आता है? कौन डाल देता है इस पृथ्वी पर अंधेरे की चादर? कौन आपके घर को अंधेरे से भर देता है? स्रोत नहीं है उसका क्योंकि है ही नहीं अंधेरा। जब सुबह सूरज आ जाता है तो अंधेरा कहां चला जाता है? कहीं सिकुड़ के छिप जाता है? कहीं नहीं सिकुड़ता, कहीं नहीं जाता। है ही नहीं, कभी था नहीं। अंधेरा कभी नहीं है, फिर भी रोज उतर आता है। प्रकाश सदा है फिर भी रोज सांझ जलाना पड़ता है और खोजना पड़ता है। ऐसा ही धर्म और अधर्म है। अंधेरे की भांति है अधर्म, प्रकाश की भांति है धर्म। प्रतिदिन खोजना पड़ता है। युग युग में, कृष्ण कहते हैं, लौटना पड़ता है। मूल स्रोत से धर्म को फिर

वापस पृथ्वी पर लौटना पड़ता है । सूर्य से फिर प्रकाश को वापस लेना पड़ता है । यद्यपि जब प्रकाश नहीं रह जाता सूर्य का तो हम मिट्टी के दिये जला लेते हैं । कैरोसिन की कंदील जला लेते हैं । उससे काम चलाते हैं, लेकिन काम नहीं चलता है । कहाँ सूरज, कहां कन्दील ? बस काम चलता है । तो जब कृष्ण जैसे व्यक्तित्व नहीं होते पृथ्वी पर तब छोटे मोटे दिये, कन्दीलें कैरोसिन की, जिनसे घुआं काफी निकलता है, रोशनी कम ही निकलती है, उनसे भी काम चलाना पड़ता है । तथाकथित साधु सन्तों की भीड़ ऐसी ही है । कैरोसिन आइल, मिट्टी का तेल - मगर रात में बड़ी कृपा उनकी । थोड़ी सी तथा धीमी, दो चार दस फीट पर रोशनी पड़ती रहती है उनकी । लेकिन बार बार अंधेरा सघन हो जाता है और बार बार करुणावान चेतनाओं को लौट आना पड़ता है, जो आकर फिर सूरज से भर देती हैं ।

कई बार ऐसा भी होता है कि सूरज जैसी चेतनाओं को आमने सामने नहीं देखा जा सकता । आपने कभी ख्याल किया कि सूरज को कभी आप आमने सामने नहीं देखते । दिये को मजे से देखते हैं । इसलिए साधु संतों से सत्संग चलता है । कृष्ण जैसे लोगों के आमने सामने मुश्किल हो जाती है । 'एन्काउण्टर' हो जाता है तो झंझट हो जाती है । कई दफा तो आंखें चौंधिया जाती हैं । सूरज की तरफ देखें तो रोशनी कम मिलेगी, आंखें बन्द हो जायेंगी, अंधेरा हो जायगा । सूरज को आदमी तभी देखता है जब ग्रहण लगता है, अन्यथा नहीं देखता कोई । यह बड़े मजे की बात है, ग्रहण लगे सूरज को लोग देखते हैं । पागल हो गये हैं ? सूरज बिना ग्रहण के रोज अपनी पूरी ताकत से मौजूद है, कोई नहीं देखता । क्या बात है ? ग्रहण लगने से थोड़ा भरोसा आता है कि हम भी देख सकते हैं, थोड़ा सूरज कम है, अधूरा है । शायद अब जोर से हमला नहीं करेगा । इसलिए कृष्ण जैसे व्यक्तियों को कभी भी समझा नहीं जाता; हमेशा 'मिस-अण्डरस्टैंड' किया जाता है । और जिनको आप समझ लेते हैं– समझ लेना वे कैरोसिन की कन्दील हैं । अपने घर में जलायी बुझायी, अपने हाथ से बत्ती नीची ऊंची की । जब जैसी चाही वैसी की । जिनको आप समझ पाते हैं, समझ लेना कि घर के मिट्टी के दिये हैं । जिनको आप कभी नहीं समझ पाते, आंखें चौंधिया जाती हैं, हजार सवाल उठ जाते हैं, मुश्किल पड़ जाती है, तो समझना कि सूरज उतरा है । इसलिए कृष्ण को हम अभी तक नहीं समझ पाये, न क्राइस्ट को समझ पाये, न बुद्ध को, न महावीर को, न मुहम्मद को । इनमें से हम किसी को नही समझ पाते । इस तरह के व्यक्ति जब भी पृथ्वी पर आते हैं, हमारी आंखें चौंधिया जाती हैं । जब वह हट जाते हैं,––जब आंख के सामने नहीं रहते तब हम अपने अपने मिट्टी के दिये जला कर समझने की कोशिश करते हैं ।

पुनः संस्थापना के लिए नष्ट नहीं होता धर्म कभी, खो जरूर जाता है । अधर्म कभी स्थापित नहीं होता, छा जरूर जाता है । ऐसा समझ में आ सके तो ठीक है ।

ब्रह्म के दो रूप

शून्य और विस्तारित

अभी विगत पन्द्रह वर्षों की गहन खोज ने विज्ञान को एक नयी धारणा दी है 'एक्सपेंडिंग युनिवर्स' की, फैलते हुए विश्व की। सदा से ऐसा समझा जाता था कि विश्व जैसा है वैसा है। नया विज्ञान कहता है, विश्व उतना ही नहीं है जितना है। रोज फैल रहा है, जैसे कि कोई गुब्बारे में हवा भरता चला जाय और गुब्बारा बड़ा होता चला जाय। यह जो विस्तार है जगत का यह उतना नहीं है, जितना कल था। यह निरन्तर फैल रहा है। ये जो तारे रात हमें दिखायी पड़ते हैं ये एक दूसरे से प्रतिपल दूर जा रहे हैं। 'एक्सपेंडिंग युनिवर्स' फैलता हुआ विश्व—इसके दो अर्थ हुए, कि एक क्षण ऐसा भी रहा होगा जब यह विश्व इतना सिकुड़ा रहा होगा कि शून्य

केन्द्र पर रहा होगा । आप पीछे लौटें । समय में जितने पीछे लौटेंगे, विश्व छोटा होता जायगा, सिकुड़ता जायेगा । एक क्षण ऐसा जरूर रहा होगा, जब यह सारा विश्व बिन्दु पर सिकुड़ा रहा होगा । फिर फैलता चला गया, आज भी फैल रहा है । परिधि बड़ी होती चली जाती है रोज । वैज्ञानिक कहते हैं, हम कुछ कह नहीं सकते कि यह कबतक बड़ी हो सकती है, यह अंतहीन विस्तार है । यह बड़ी होती ही चली जायेगी ।

एक दूसरी बात भी ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि विज्ञान ने यह शब्द अभी उपयोग करना शुरू किया है, 'एक्सपेंडिंग युनिवर्स' लेकिन उपनिषद जिसे ब्रह्म कहते हैं, उस ब्रह्म का मतलब होता है 'दी एक्सपेंडिंग '।– ब्रह्म का मतलब परमात्मा नहीं होता । ब्रह्म का अर्थ होता है फैलता हुआ । ब्रह्म का अर्थ होता है, जो फैलता ही चला जाता है । ब्रह्म और विस्तार एक ही मूल धातु से निर्मित होते हैं । एक ही शब्द के रूप हैं । ब्रह्म का मतलब है, जो सदा विस्तीर्ण होता चला जाता है । विस्तीर्ण है ऐसा नहीं, स्थिति में विस्तीर्ण है ऐसा नहीं, प्रक्रिया में विस्तीर्ण है । जो होता चला जाता है । 'कांस्टेंटली एक्सपेंडिंग', निरंतर विस्तीर्ण होता हुआ जो है ।

अब ब्रह्म के दो अर्थ हुए –एक तो ब्रह्म का वह अर्थ हुआ जिसको असंभूति कहता है उपनिषद का ऋषि । असंभूति ब्रह्म का अर्थ है शून्य ब्रह्म । जब वह नहीं फैला था उस क्षण की हम कल्पना करें । फलाव का बिल्कुल प्राथमिक क्षण, जब बीज टूटा नहीं था । बीज के टूटने के बाद तो अंकुर फैलता ही चला जायेगा । वृक्ष होगा । जरा छोटे से बीज से इतना बड़ा वृक्ष होगा कि हजार बैलगाड़ियां उसके नीचे विश्राम कर सकेंगी । और फिर उस वृक्ष में अनंत बीज लगेंगे । और अनंत बीज में से एक एक बीज फिर इतना ही बड़ा हो जायेगा । एक छोटा सा बीज भी फैलकर अनन्त बीज होता चला जा रहा है । असंभूत ब्रह्म का अर्थ है बीज रूप ब्रह्म । बिन्दु रूप ब्रह्म । कल्पना ही कर सकते हैं हम, क्योंकि बिन्दु की कल्पना ही होती है । परिभाषा यह है बिन्दु की, जिसमें लम्बाई और चौड़ाई न हो । ऐसे बिन्दु की सिर्फ व्याख्या हो सकती है, बिन्दु को खींचा नहीं जा सकता । क्योंकि बिना लम्बाई चौड़ाई के कागज पर बिन्दु बनेगा नहीं । इसलिये जो बिन्दु दिखायी नहीं पड़ता वह सिर्फ परिभाषा में है । असम्भूत ब्रह्म का अर्थ है युक्लीड जिसे बिन्दु कहता है, वही असंभूत है । जिसमें अभी होना शुरू नहीं हुआ । जिसमें अभी भूत प्रगट नहीं हुआ---असम्भूत ! अभी 'एक्जीस्टेंस' आया नहीं, 'पोटेंशियल' है, अभी छिपा है । अभी प्रगट होगा, होने को है । लेकिन अभी बिन्दु है ।

इस असंभूत ब्रह्म की एक स्थिति हुई, लेकिन इसे हम नहीं जानते । हम तो दूसरे ब्रह्म को जानते हैं, संभूत ब्रह्म-- जो हो गया । हम तो वृक्ष रूप ब्रह्म को जानते

हैं जो हो गया, और होता ही चला जा रहा है । फैलता ही चला जा रहा है । हमारा यह विश्व रोज बड़ा हो रहा है । रोज कहना बहुत कम है, यह प्रतिपल बड़ा हो रहा है । सूर्य की किरणों की जो गति है उसी गति से तारे एक दूसरे से दूर हट रहे हैं– केन्द्र से दूर हट रहे हैं । और सूर्य की किरणों की गति है प्रति सेकेन्ड एक लाख छियासी हजार मील । इतनी गति से परिधि केन्द्र से दूर जा रही है । अनन्त काल से इस तरह दूर जा रही है । वैज्ञानिक भी तय नहीं कर पाते कि समय के उस क्षण को हम कैसे तय करें, जब यह शुरू हुई होगी यात्रा ! जब पहला कदम उठाया होगा बीज ने वृक्ष होने का । और हम यह भी नहीं कह सकते कि क्या होगी अंतिम यात्रा ? विज्ञान बड़ी कठिनाई में पड़ गया है। क्योंकि 'एक्सपेंडिंग युनिवर्स कन्सीवेबल' नहीं है कि कहां जाकर रुकेगा और क्यों रुकेगा ? रुकने का कोई कारण क्या है ? रुकने के लिए जरूरत है कि कोई और चीज बाधा बन जाय । जैसे एक पत्थर को मैं फेंकता हूं हाथ से और इस पत्थर को जबतक कोई बाधा न मिले तो यह कहीं भी नहीं रुकेगा । पर बाधा मिल जाती है । वह किसी वृक्ष से टकरा जाता है । वृक्ष से न टकराये तो जमीन की कशिश उसे खींच रही है पूरे वक्त । लेकिन यह जो सम्भूत ब्रह्म है, यह कहां रुकेगा ? इसको कोई बाधा आयेगी कहां से ? क्योंकि सभी कुछ इसके भीतर है, इसके बाहर कुछ भी नहीं है । अगर बाहर कुछ है तो उसका मतलब है कि वह भी इसका हिस्सा हो गया, सम्भूत ब्रह्म का हिस्सा हो गया । इसलिए बाधा तो कहीं आयेगी नहीं, यह रुकेगा कहां ? यह रुकेगा कैसे ? यह बढ़ता ही चला जायेगा । इसलिए आइंस्टीन और प्लांक जिन्होंने इसपर काफी काम किया, वे बड़ी उलझन में पड़ गये । उनको आखिर, इसे रहस्य की तरह छोड़ देना पड़ा । इस फैलाव के रुकने का कोई कारण दिखायी नहीं पड़ता, और यह इनकंसीवेबुल मालूम पड़ता है कि फैलता ही चला जाय । अगर यह इसी तरह फैलता चला गया तो एक दिन तारे इतने दूर हो जायेंगे कि एक तारे से दूसरा तारा दिखायी नहीं पड़ेगा । लेकिन उपनिषद कुछ और ढंग से सोचते हैं और उस ढंग को समझ लेना चाहिए ।

एक दिन आज नहीं कल, वैज्ञानिक को उस ढंग से सोचना शुरू करना पड़ेगा । लेकिन अब तक पश्चिम के विज्ञान की वह धारणा नहीं है । न होने का कारण है । न होने का कारण है कि पश्चिम का पूरा विज्ञान ग्रीक फिलासफी से, यूनानी दर्शन से विकसित हुआ । और यूनानी दर्शन की जो मूल मान्यताएं हैं वह उनपर खड़ा है । यूनानी दर्शन की एक मूल मान्यता यह है कि समय सदा सीधी रेखा में गति करता है । इससे पश्चिम का विज्ञान बड़ी मुश्किल में पड़ा है । भारतीय दर्शन की धारणा बड़ी भिन्न है, भारतीय दर्शन की धारणा है कि सभी गति वर्तुलाकार है, 'सर्कुलर' है । कोई

गति सीधी रेखा में नहीं होती । इसको समझें । जैसे एक बच्चा पैदा हुआ, तो साधारणतः अगर हम यूनानी चिन्तक से पूछें तो उसके हिसाब से बच्चे और बूढ़े के बीच में सीधी रेखा खींची जा सकती है । भारतीय दार्शनिक कहेगा, नहीं । बच्चे ओर बूढ़े के बीच एक वर्तुल बनाया जा सकता है, क्योंकि बूढ़ा वहीं पहुंच जाता है मरने वक्त, जहां से बच्चे ने शुरू किया है । सर्किल है । इसलिए बूढ़े अगर बच्चों जैसा व्यवहार करने लगते हैं तो बहुत हैरानी की बात नहीं है । सीधी रेखा नहीं है । बचपन और बुढ़ापे के बीच वर्तुल है, एक गोल घेरा है । जवानी वर्तुल का बीच का हिस्सा है, उठाव है । फिर जवानी के बाद वापस लौटनी शुरू हो गयी यात्रा ।

ऐसा समझें, जैसे कि ऋतुएं घूमती हैं । भारतीय धारणा समय की ऋतुओं के घूमने जैसी है, मण्डलाकार । वर्षा आती है, फिर ग्रीष्म आता है, फिर सर्दी आती है, फिर वर्तुळ है । सीधी नहीं है, एक वर्तुळ है । सुबह होती है सांझ होती है, फिर सुबह आती है, फिर सांझ होती है ! एक वर्तुळ है । पूर्वीय मनीषी की धारणा ऐसी है कि समस्त गतियां वर्तुलाकार हैं । पृथ्वी भी गोल घूमती है, ऋतुएं भी गोल घूमती हैं, सूर्य भी गोल घूमता है, चांद तारे भी गोल घूमते हैं । गति मात्र वर्तुळ है । कोई गति सीधी नहीं है । जीवन भी गोल घूमता है । यह जो 'एक्सपेंडिंग युनिवर्स' है वैसे ही है जैसे बच्चा जवान हो रहा है । लेकिन अगर बच्चा जवान ही होता जाय तो बड़ी मुश्किल पड़ेगी । कहाँ होगा रुकाव ? लेकिन जब तक बच्चा जवान हो रहा है थोड़ी ही देर में वर्तुल डूबना शुरू हो जायेगा और जवान बूढ़ा होने लगेगा । अगर जन्म फैलता ही चला जाय और मृत्यु के बिन्दु पर वापस लौट न आये तो कहां रुकेगा ? इसलिए भारत का जो चिन्तन है वह कहता है कि यह जो फैलता हुआ ब्रह्म है, यह फैलकर बच्चा रहेगा, जवान होगा, बूढ़ा होगा, वापस असंभूत ब्रह्म में गिर जायेगा । वापस शून्य हो जायेगा । जहां से आया है वहीं वापस लौट जायेगा । बड़ा लम्बा वर्तुल होगा इसका । हमारे जीवन का वर्तुळ सत्तर साल का है । लेकिन छोटे वर्तुळ के जीवन भी हैं । एक पतिंगा सुबह पैदा होता है, सांझ वर्तुल पूरा हो जाता है । इससे भी छोटे वर्तुल हैं । क्षण भर जीने वाले प्राणी भी हैं । क्षण के शुरू में पैदा होते हैं, क्षण के बाद में डूब जाते हैं । और आप यह मत सोचना कि जो क्षण भर जीता है वह सत्तर साल वाले से कम जीता है । क्योंकि क्षण भर के वर्तुल में, सत्तर साल में जो आप पूरा करते हैं वह पूरा हो जाता है । बचपन आता है, जवानी आती है, प्रेम होता है, बच्चे पैदा होते हैं, बुढ़ापा आ जाता है । मौत हो जाती है । क्षण भर के वर्तुल में भी सत्तर साल पूरे हो जाते हैं । सत्तर साल कोई बड़ा वर्तुळ नहीं है । पृथ्वी हमारी, वैज्ञानिक कहते हैं कि कोई चार अरब वर्ष पहले पैदा हुई । हमारे पास कोई पता लगाने का उपाय नहीं है

कि पृथ्वी अब किस अवस्था में होगी, लेकिन कई हिसाब से लगता है कि बूढ़ी होती है। भोजन कम पड़ता जाता है, आदमी ज्यादा होते चले जाते हैं, मौत निकट मालूम होती है, सब चीजें चुकती जाती हैं। कोयला चुकता जाता है, पेट्रोल चुकता जाता है, भोजन चुकता जाता है। जमीन के सब रासायनिक द्रव्य चुकते जाते हैं। जमीन बूढ़ी होती है। जल्दी ही मरेगी। जल्दी का मतलब ? हमारे हिसाब से नहीं, क्योंकि जिसको चार अरब वर्ष लगे हों बूढ़ा होने में, उसको मरने में भी अरब वर्ष लग जायं, आश्चर्य नहीं। लेकिन हमें जमीन का पता नहीं चलता। आपके शरीर में, एक आदमी के शरीर में अन्दाजन सात करोड़ जीवाणु हैं। उन जीवाणुओं को कोई पता नहीं कि आप भी हैं। वे पैदा होंगे, जवान होंगे, बूढ़े होंगे, बच्चे छोड़ जायेंगे, मर जायेंगे, उनकी कब्र बन जायेगी आपके भीतर, आपको उनका पता नहीं चलेगा। उनको तो आपका बिल्कुल पता नहीं। आप सत्तर साल जियेंगे, इस बीच आपके भीतर करोड़ों जीवन पैदा होंगे और विदा हो जायेंगे। ठीक ऐसे ही पृथ्वी को हमारा कोई पता नहीं है, हमें पृथ्वी के जीवन का कोई पता नहीं है। अरबों वर्ष का उसका जीवन वर्तुल है। पृथ्वी का चार पांच अरब वर्ष का जीवन वर्तुल है। पूरे ब्रह्म का, ब्रह्माण्ड का, संभूत ब्रह्म का, कितने वर्षों का है, कहना कठिन है। लेकिन एक बात तय है कि इस जगत में नियम का कोई भी उल्लंघन नहीं है। देर अबेर नियम पूरा होता है।

इसलिए उपनिषद के ऋषि कहते हैं, दो हिस्से कर लें ब्रह्म के—संभूत, जो है। असंभूत, जिससे हुआ है और जिसमें लीन हो जायेगा। बिन्दु ब्रह्म, और विस्तीर्ण ब्रह्म। विस्तीर्ण ब्रह्म को जान लेता है वह मृत्यु को पार करता है। बिन्दु ब्रह्म को जान लेता है वह अमृत को उपलब्ध होता है। क्योंकि विस्तीर्ण ब्रह्म जो है वह मृत्यु का घेरा है। मृत्यु घटेगी ही। वर्तुल को पूरा होना पड़ेगा। जन्म हुआ है, मृत्यु होगी।

क्यों, ऋषि कहता है कि वह मृत्यु को जीत लेता है ? मृत्यु को जीतने का क्या अर्थ है ? क्या ऋषि मरते नहीं ? सब ऋषि मर जाते हैं, सब ज्ञानी मर जाते हैं। निश्चित ही मृत्यु को जीतने का अर्थ, 'न मरना' नहीं है। मृत्यु को जीतने का अर्थ है जो व्यक्ति यह जान लेता है, गहरे में अनुभव कर लेता है कि जन्म के साथ मृत्यु जुड़ी ही है, अनिवार्य है। जो यह जान लेता है कि जन्म पहली शुरुआत है वर्तुल की, मृत्यु अन्त है। जो इस बात को इतनी प्रगाढ़ता से जान लेता है कि मृत्यु अनिवार्यता है, नियति है, वह मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है। अनिवार्य से क्या भय है ? जिससे निवारण नहीं हो सकता है उसका भय कैसा ? जो होगा ही, जो होना ही है उसकी चिन्ता भी क्या ? चिन्ता तो उसकी होती है जिसमें परिवर्तन हो सके। इसलिए मजे की बात है कि पश्चिम में जितनी मृत्यु की चिन्ता है उतनी पूरब में कभी नहीं थी। जब कि पश्चिम

को ऐसा लगता है कि मृत्यु को जीतने के उपाय उसके पास हैं, और पूरब को कभी नहीं लगा कि ऐसे जीतने के कोई उपाय हैं। इसके कारण हैं। अगर ऐसा लगे कि मृत्यु को बदला जा सकता है तो चिन्ता पैदा होगी। जो भी चीज बदली जा सकती है, चिन्ता आयेगी। जो नहीं बदली जा सकती, तो चिन्ता का कोई उपाय नहीं, चिन्ता करके करियेगा क्या ? चिन्ता किसलिए ! अगर मृत्यु सुनिश्चित है, अगर जन्म के साथ ही तय हो गयी तो चिन्ता का क्या कारण है ? युद्ध के मैदान पर सिपाही जाते हैं तो जबतक युद्ध के मैदान पर नहीं पहुंचते तबतक भयभीत, पीड़ित और चिन्तित होते हैं। जैसे ही युद्ध के मैदान पर पहुंचते हैं, दिन दो दिन के भीतर सब चिन्ता मिट जाती है। कायर से कायर सैनिक भी युद्ध के मैदान में पहुंच कर बहादुर हो जाता है। क्योंकि बम गिरने लगे सिर के ऊपर, अब कोई उपाय नहीं रहा !

पाणिनी के संबंध में छोटी सी मीठी कथा है। अपने विद्यार्थियों को बिठाकर पाणिनी व्याकरण पढ़ा रहा है। जंगल है, एक सिंह दहाड़ता हुआ आ जाता है। पाणिनी कहता है, सुनो सिंह की दहाड़ और इस दहाड़ का क्या व्याकरण रूप होगा, वह समझो। बच्चे कंप रहे हैं और पाणिनी, सिंह की दहाड़ की क्या व्याकरण व्यवस्था होगी, वह समझा रहा है। कहते हैं पाणिनी के ऊपर सिंह ने हमला कर दिया तब भी वह व्याकरण समझा रहा है। पाणिनी को सिंह खा गया, तब भी वह–'सिंह मनुष्य को खाता है,' तो इसका भाषागत रूप क्या है ? इसकी व्याकरण क्या है? वह समझा रहा है। नहीं, पाणिनी भी भाग कर बचाव तो कर ही सकता था, ऐसा हमें लगता है। कुछ उपाय किया जा सकता था। लेकिन पाणिनी जैसे लोगों की समझ यह है कि आज मरे कि कल, मरना जब सुनिश्चित है तो आज और कल से क्या फर्क पड़ता है। समय के व्यवधान से कोई फर्क पड़ता है ? जब मृत्यु होनी ही है तो आज होगी कि कल होगी, कि परसों होगी, उसकी स्वीकृति है। इस स्वीकृति में विजय है। 'दिस एक्सेप्टिबिलिटी'–, यह स्वीकार, कि हमने जन्म के साथ मृत्यु को स्वीकार कर लिया है, फैलाव के साथ ही सिकुड़ने को स्वीकार कर लिया है। फैले हैं, उसी दिन जाना कि सिकुड़ जायेंगे, जन्मे हैं, उसी दिन जाना कि विदा हो जायेंगे। प्रगट हुए हैं, उसी दिन जाना कि अप्रगट हो जायेंगे। वर्तुल पूरा होकर रहेगा।

ऐसी स्वीकृति मृत्यु से मुक्ति है। फिर मरना कैसा ? मरने वाला तो पार हो गया। उसे तो कोई जन्म का मोह न रहा और मृत्यु का कोई भय न रहा। ध्यान रहे, हमारे जीवन में मृत्यु और जन्म दो छोर हैं जो जीवन के बाहर हैं। जन्म हमारा जीवन के बाहर है क्योंकि जन्म के पहले हम नहीं थे। मृत्यु हमारे जीवन के बाहर है क्योंकि इस मृत्यु के बाद हम नहीं होंगे। वह बाउण्ड्री लाइन है, सीमान्त है। लेकिन

जो जानता है उसके लिए यह सीमान्त नहीं है। मृत्यु और जन्म जीवन के बीच में घटी दो घटनाएं हैं। क्योंकि वह कहता है कि जन्म किसका ? मैं पहले था, तभी तो मैं जन्म सका, नहीं तो मैं जन्मता कैसे ? मैं अप्रगट था, तभी तो प्रगट हो सका, अन्यथा मैं प्रगट कैसे होता ? बीज में अगर वृक्ष नहीं छिपा था तो कोई उपाय नहीं था कि वह पैदा हो जाय। और मैं मर सकूंगा तभी, क्योंकि मैं हूं, नहीं तो मृत्यु किसकी होगी ? जन्म के पहले मैं था तो जन्म हो सका, मृत्यु के बाद भी मैं रहूंगा तो ही मृत्यु हो सकती है, नहीं तो मृत्यु होगी किसकी ? जो जानता है, उसके लिए मृत्यु अन्त नहीं है। जीवन के बीच घटी एक घटना है। जन्म भी जीवन के बीच घटी एक घटना है, प्रारम्भ नहीं है। जीवन, वर्तुल के बाहर है लेकिन वह जीवन असंभूत है। वह अप्रगट है। अनअभिव्यक्त है, 'अनएक्सप्रेस्ड' है 'अनमैनीफेस्ड' है। वह असम्भूत जीवन, सम्भूत बनता है जन्म से, फिर असंभूत बन जाता है मृत्यु से। जो जान लेता है सम्भूत जगत की इस व्यवस्था को, वह फिर व्यवस्था से पीड़ित नहीं होगा। एक मकान के भीतर आप हैं, आप जानते हैं कि यह दीवाल है, और यह दरवाजा है। तो फिर आप दीवाल से सिर नहीं टकराते। फिर आप दीवाल से निकलने की कोशिश नहीं करते। निकलना होता है, दरवाजे से निकल जाते हैं। लेकिन फिर इसके लिए बैठकर रोते नहीं कि दीवाल दरवाजा क्यों नहीं है। लेकिन जिसे दरवाजे का पता नहीं है वह बेचारा दीवाल से सिर टकरायेगा और बहुत बार चिल्लायेगा कि दीवाल दरवाजा क्यों नहीं है (दरवाजे का पता न हो तो)! दरवाजे का पता हो तो दीवाल दीवाल है, दरवाजा दरवाजा है। दीवाल से निकलने की आप कोशिश नहीं करते, दरवाजे से निकलने की कोशिश करते हैं। व्यवस्था को पूरा जो जान लेता है वह व्यवस्था से मुक्त हो जाता है। जो व्यवस्था को अधूरा जानता है वह संघर्ष में पड़ा रहता है। हम जानते हैं, जन्म है तो मृत्यु है। यह जानना इतना साफ है, इतना चरम है, इतना 'अल्टीमेट' है इसमें फर्क को कोई उपाय नहीं। इसी का नाम नियति है। सम्भूत की नियति, सम्भूत के बीच भाग्य।

लेकिन भाग्य से हमने बड़े गलत अर्थ लिये। असल में हम गलत आदमी हैं इसलिए सच चीजों के गलत अर्थ लेते हैं। अर्थ सही और गलत हो जाते हैं, गलत और सही आदमियों के साथ। भाग्य का अर्थ अगर निराशा बन जाय, तो फिर आप समझे नहीं। हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाय आदमी, भाग्य को समझकर, तो आप समझे नहीं। भाग्य का अर्थ परम आशावान है। बड़ी मुश्किल मालूम पड़ेगी बात। भाग्य का मतलब ही यह है कि अब दुख का कोई कारण ही न रहा। अब तो निराशा की कोई जगह ही न रही। मृत्यु है, और है। इसमें दुख कहां है। इसमें पीड़ा कहां है।

दुख और पीड़ा वहीं थे, जब स्वीकार न था। तो निराशा कहां है ? बुद्ध कहते हैं कि जो बना है वह बिखरेगा, जो मिला है वह छूटेगा। मिलन के क्षण में जानना कि विदा मौजूद हो गयी है। परन्तु हम उदास हो जायेंगे। प्रेमी से मिले, उसी क्षण ख्याल आ गया कि विदा का क्षण उपस्थित होगा, अब थोड़ी देर में विदा होगी, बस हमारा मिलन भी नष्ट हो जायेगा। मिलन में जो थोड़ी बहुत सुख की भ्रांति पैदा होती है वह भी गयी। क्योंकि विदायी दिखायी पड़ने लगी। जन्म हुआ, बैण्ड बाजे बजे, उसी वक्त किसी ने कहा, मौत निश्चित हो गयी। मरेगा यह बच्चा। हम कहेंगे, ऐसे अपशकुन की बातें मत बोलो। इससे बड़ा मन उदास होता है। इससे चित्त को बड़ा धक्का लगता है। लेकिन बुद्ध जब कहते हैं, मिलन में विदा उपस्थित हो गयी तो वे मिलन के सुख को नहीं काट रहे हैं केवल विदा के दुख को काट रहे हैं। इसमें फर्क समझ लेना। नासमझ मिलन के सुख को काट डालेगा, समझदार विदा के दुख को काट डालेगा। क्योंकि जब मिलन में ही विदा उपस्थित है तो विदा का दुख कैसा ? वह तो जिस दिन मिलन चाहा था, उसी दिन विदा भी चाह ली थी। जब जन्म में ही मौत उपस्थित है तो मृत्यु का दुख कैसा ? वह तो जिस दिन जन्म चाहा था उसी दिन मौत भी मिल गयी। नासमझ जन्म के सुख को काट देगा, समझदार मृत्यु के दुख को काट देगा।

सम्भूत ब्रह्म को, विस्तीर्ण ब्रह्म को, प्रगट ब्रह्म को जानकर व्यक्ति मृत्यु के पार हो जाता है। मृत्यु के, पीड़ा के, संताप के, सबके पार हो जाता है। ध्यान रहे, दुख, पीड़ा, संताप और चिन्ता सब मृत्यु की छायाएं हैं। 'शेडो आफ डेथ'। जो व्यक्ति मृत्यु से मुक्त हो गया, उसके लिए न कोई दुख है, न कोई चिन्ता है, नई कोई पीड़ा है। कभी आपने ठीक से ख्याल नहीं किया होगा कि जब भी चिन्तित होते हैं तो किसी न किसी कोने में मौत खड़ी होती है, उस वजह से चिन्तित होते हैं। एक आदमी के घर में आग लग गयी, वह चिन्तित होता है। एक आदमी का दिवाला निकल गया, वह चिन्तित है। क्योंकि दिवाला निकलने से जीवन अब कष्ट में पड़ेगा और मौत आसान हो जायेगी। मकान जल जाने से अब जीवन असुरक्षित हो जायेगा और मौत सुगमता पायेगी। अंधेरे में अकेला खड़ा आदमी चिन्तित होता है क्योंकि कुछ दिखायी नहीं पड़ता और मौत अगर आ जाय तो अभी दिखायी भी नहीं पड़ेगी। जहां जहां आप चिन्तित होते हों, फौरन पहचानना आस पास कहीं खड़ी हुई मौत को पाएंगे। मौत की छाया है चिन्ता। वहां जहां दुःख और पीड़ा मन को पकड़ते हों वहां समझ लेना कि कहीं सम्भूत ब्रह्म की समझ में नासमझी हो रही है। अनिवार्य को आप निवार्य मान रहे हैं। बस वहीं से दुख शुरू हो रहा है। जो होना ही है, उसकी आप आशा किये जा रहे हैं कि शायद न हो। वहीं से चिन्ता शुरू हो गई। वहीं संताप और 'एंग्विश'

पैदा होता है। नहीं, जो होना ही है, वही हो रहा है, वही होता है, अन्यथा और कोई उपाय नहीं है। तब इस स्वीकृति के साथ, इस तथाता के साथ, सम्भूत ब्रह्म की इस व्यवस्था की स्वीकृति के साथ, भीतर सब शान्त हो जाता है। अशान्ति का उपाय नहीं रह जाता। इसलिए कहा है ऋषि ने, सम्भूत ब्रह्म को जानकर मृत्यु से मुक्ति हो जाती है। लेकिन यह आधी बात है, यह आधा सूत्र है। अभी एक और जानने को छूट गया है, जो और गहन है। हम तो इसको ही नहीं जान पाते, इसी से उलझकर परेशान हो जाते हैं। अज्ञान में नाहक दीवालों से सिर फोड़ते रहते हैं। जहां दरवाजा नहीं है, वहां नाहक टकराते रहते हैं। ताश के घर बनाते रहते हैं, पानी पर रेखाएं खींचते रहते हैं और उनके मिटने को देखकर रोते रहते हैं। जिस दिन पानी पर रेखा खींचें उसी दिन जान लेना, उसी क्षण जान लेना कि पानी पर खींची गयी रेखा खींचते ही मिटना शुरू हो जाती है। इधर आपने खींची नहीं, उधर वह मिटने लगी। पानी पर रेखा खींचियेगा और स्थायी करने की कोशिश करियेगा तो इसमें कसूर पानी का है कि रेखा का? कि आपका? इसमें दोष किसको दीजिये, पानी को, रेखा को? जो आदमी पानी को दोष देगा, रेखा को दोष देगा, वह दुखी होगा। जो समझेगा अपनी नासमझी वह हंसेगा। जान लेगा कि पानी पर खींची गयी रेखा मिटती है। मिटनी ही चाहिए। खिंच जाय तो ही झंझट है।

सम्भूत ब्रह्म को ही हम नहीं समझ पाते, असम्भूत को तो कैसे समझ पायेंगे? प्रगट जो है बिल्कुल सामने जो खड़ा है,—मौत से ज्यादा प्रगट कोई चीज है? धोखा दिये जाते हैं अपने को, डिसेप्शन दिये जाते हैं। कोई दूसरा मरता है तो कहते हैं, बेचारा मर गया। ख्याल ही नहीं आता कि अपनी मरने की खबर आयी है।

एक पंक्ति मुझे याद आती है एक आंग्ल कवि की। कोई मर जाता है गांव में तो चर्च की घण्टी बजती है। उस पंक्ति में कहा है, किसी को भेजो मत पूछने, कि घण्टी किसके लिए बजती है? 'इट टाल्स फार दी'—तुम्हारे लिये ही बजती है। बिना पूछे ही जानो कि तुम्हारे लिए ही बजती है। मौत जैसा प्रगट तत्व ऐसा हम छिपा कर चलते हैं कि अगर कोई मंगलग्रह का यात्री हमारे बीच उतरे और दो चार दिन हमारे घर में रहे तो दो चीजों का उसको पता नहीं चलेगा, जो दोनों जुड़ी हैं। ख्याल में ले लें। उसे पता नहीं चलेगा कि मौत होती है। उसे पता नहीं चलेगा कि सैक्स होता है। सैक्स को भी हम छियाये हैं, मौत को भी हम छिपाये हैं। ध्यान रखें, सैक्स जन्म का सूत्र है। वह संभूत ब्रह्म का पहला चरण है। और मौत आखिरी सूत्र है, वह आखिरी चरण है। मृत्यु के भय की वजह से सैक्स का दमन शुरू हुआ। वह पहला सूत्र है कि अगर मौत को दबाना है तो जन्म की प्रक्रिया को भी भुला देना होगा। क्योंकि जन्म के साथ

मौत जुड़ी हुई है। इसलिए जन्म हम अन्धेरे में छिपा देते हैं। जन्म की प्रक्रिया को पर्दों में डाल देते हैं। और मौत को हम गांव के बाहर निकाल देते हैं। कब्रिस्तान बना देते हैं दूर। कब्र पर फूल बो देते हैं कि कोई निकले भी कब्र के पास भूलचूक से तो फूल दिखायी पड़ें, कब्र दिखायी न पड़े। लाश को ले जाते हैं तो फूलों में ढांक लेते हैं। वह मरा हुआ दिखायी न पड़े, खिला हुआ दिखायी पड़े। कितने ही फूलों में ढांको, लेकिन जो मर गया वह मर गया। कितनी ही खूबसूरत कब्रें बनाओ और कब्रों पर कितने ही मजबूत पत्थर लगाओ और उनपर नाम लिखो, जब कब्र के भीतर जो पड़ा है आज, वह न बच सका, तो पत्थरों पर लिखे हुए नाम कितनी देर बचेंगे ? और कब्रों को कितना ही गांव के बाहर सरकाओ, मौत गांव में ही घटती रहेगी। कब्रिस्तान में नहीं घटेगी।

इधर हम सैक्स को दबाते हैं, छिपाते हैं, क्योंकि वह जन्म है। उसको भी दबाने और छिपाने के पीछे अचेतन कारण हैं। कारण यही है कि वह पहला सूत्र है। अगर उसको उघाड़कर रखा तो मौत भी उघड़ जायेगी। वह भी बच नहीं सकती ज्यादा दिन। इसलिए बड़े मजे की बात है कि जिन समाजों में सेक्स सप्रेशन समाप्त हुआ है—जहां जहां समाज ने सैक्स को मुक्त कर दिया, प्रगट कर दिया, वहां वहां मौत की चिन्ता बढ़ गयी।

मैंने सुना है यहूदी बच्चा एक दिन अपने घर लौट आया। स्कूल से समझ कर आया है कि बच्चों का जन्म कैसे होता है ? नये ज्ञान से बहुत आह्लादित है। किसी को बताने को उत्सुक है। घर आकर उसने अपनी मां को पूछा कि मेरा जन्म कैसे हुआ ? उसकी मां ने कहा, परमात्मा ने तुझे भेजा। मेरे पिताजी का जन्म कैसे हुआ ? उनको भी परमात्मा ने भेजा। उनके पिताजी का जन्म कैसे हुआ ? मां थोड़ी हैरान हुई। उसने कहा, उनको भी परमात्मा ने भेजा। वह पूछते ही चला गया, और उनके पिता ? सात पीढ़ियां आ गयीं। मां ने कहा, उत्तर एक ही है। तो उस लड़के ने कहा कि इसका क्या मतलब होता है ? "व्हाट डज दिस मीन ? सैक्स हैज नाट एक्जीस-टेड इन अवर फैमिली फार सेवन जेनरेशंस ?" सात पीढ़ियों से सैक्स हमारे घर में है ही नहीं ? क्योंकि मैं तो स्कूल में पढ़कर आ रहा हूं कि बच्चे ऐसे पैदा होते हैं !

नहीं, बहुत अचेतन भय है सैक्स को दबाने का। वह जन्म का पहला सूत्र है। जब तक बच्चों को पता नहीं है कि कैसे पैदा होता है आदमी, तबतक वे यही पूछते चले जाते हैं, कैसे पैदा होता है ? जिस दिन पता चल जायगा, कैसे पैदा होता है, वे पूछेंगे, मरता कैसे है ? पैदा होने वाले सूत्र को ही छिपाये चले जाओगे, उसी के आस पास घूमते रहेंगे और पूछते रहेंगे, और कभी मौका नहीं आयेगा कि पूछें, मरता कैसे

है ? जब तक पता नहीं चला कि पैदा कैसे होता है तो मरने का सवाल नहीं उठता। ध्यान रहे, पैदा होने का सूत्र साफ है तो दूसरा सवाल मौत के सिवाय अन्य नहीं हो सकता। इसलिए दबा दिया इधर काम को, छिपा दिया उधर कब्र को, उधर मृत्यु को छिपा दिया। उन दोनों के बीच में हम जीते हैं अन्धेरे में। निश्चित ही बहुत भयभीत जीते हैं। न जन्म का पता, न मौत का पता फिर भय तो होगा ही। सम्भूत ब्रह्म जो इतना प्रगट है साफ है, उसको भी हम झुठलाते हैं। तो असम्भूत जो अप्रगट है, अनअभिव्यक्त है, उसका तो कहना ही क्या? वहां तक हम पहुंचेंगे कैसे ? जन्म और मृत्यु को ठीक से जान लें –एक ही चीज के दो छोर हैं। वर्तुल का प्रारम्भ है जन्म, उसी वर्तुल का अन्त है मृत्यु। मृत्यु उसी जगह पहुंचकर होती है, जहां से जन्म होता है। मृत्यु की घटना और जन्म की घटना एक ही घटना है।

क्या होता है जन्म में? शरीर निर्मित होता है। पुरुष और स्त्री के अणुओं से कम्पोजिट बाडी निर्मित होते हैं। आधे आधे दोनों के पास हैं इसलिए स्त्री पुरुष का इतना आकर्षण है। इसलिए वह आधे तत्व दोनों खिंचते हैं। पूरा होना चाहते हैं। इसलिए सब विधि विधान, सब नियम, सब सिद्धांत, सब शिक्षकों को छोड़ के बच्चे पैदा होते चले जाते हैं। सिर्फ ब्रह्मचर्य की शिक्षाएं देने वाले लोग आते हैं और चले जाते हैं, कोई परिणाम दिखायी नहीं पड़ता। आकर्षण इतना गहरा है कि सब शिक्षाएं ऊपर ही रह जाती हैं। जैसे हमने एक चीज को दो टुकड़ों में तोड़ दिया हो और वे वापस मिलना चाहती हों। मिलते ही नया शरीर निर्मित हो जाता है। आधे अणु स्त्री देती है, आधे अणु पुरुष देता है। जन्म का मतलब है, पुरुष और स्त्री के आधे अणुओं से मिलकर पूरे शरीर का निर्माण। जैसे ही यह शरीर निर्मित होता है, एक आत्मा उसमें प्रवेश कर जाती है। जिस आत्मा की आकांक्षाएं उस शरीर से पूरी होती हैं, वह आत्मा प्रवेश कर जाती है। यह प्रवेश वैसा ही सहज, स्वचलित है जैसे कि यहां पानी गिरता है और गड्ढे में प्रवेश कर जाता है। उतना ही नियमित है। आत्मा अपने अनुकूल गर्भ को खोजकर प्रवेश कर जाती है।

मृत्यु में क्या होता है? वह जो आधे आधे तत्व मिले थे, वापस बिखरने लगते और टूटने लगते हैं, कुछ और नहीं होता। भीतर से जोड़ फिर शिथिल होने लगता है। बुढ़ापे का अर्थ है जोड़ शिथिल होना। भीतर की जो 'कम्पोजिट बाडी' थी वह 'डीकम्पोज' होने लगी। जो जुड़ा था, वह फिर बिखरने लगा। उसके बिखरने का सूत्र जन्म के दिन ही तय हो गया और किसी ढंग से नहीं, वैज्ञानिक के ढंग से तय हो गया। हमारा ज्ञान कम है, विज्ञान का है, लेकिन बढ़ता जा रहा है। आज नहीं कल, बच्चे के जन्म के साथ हम कह सकेंगे कि इसकी 'बिल्टइन प्रोसेस' कितने दिन चल

सकती है। बच्चा सत्तर साल चल सकता है कि अस्सी साल चल सकता है कि सौ साल चल सकता है। ठीक वैसे ही जैसे हम एक घड़ी को गारन्टी देते हैं कि दस साल चल सकती है। क्योंकि इसके कल पुर्जों की परख कहती है कि दस साल तक के संघर्ष को झेल लेगी--हवा के, ताप के, गति के। दस साल के संघर्ष को झेल कर बिखर जायेगी। जिस दिन बच्चा पैदा होता है उस दिन दोनों के अणु मिल-कर यह तय कर देते हैं कि यह कितने दिन तक हवा, पानी, गर्मी, बरखा, धूप, दुख, पीड़ा, संघर्ष, मिलन, विरह, मित्रता, शत्रुता, आशा, निराशा, रात दिन, इन सबको झेल सकेगा ? और झेलते झेलते बिखरने लगेगा। और वह दिन आ जायेगा जब ये मिले थे अणु, वे बिखरकर अलग हो जायेंगे। उनके अलग होते ही आत्मा को, शरीर छोड़ देना पड़ेगा। मृत्यु और यौन, सैक्स और डेथ एक ही चीज के दो छोर हैं। यौन जिसे मिलाता है, मृत्यु उसे बिखरा देती है। यौन जिसे संयुक्त करता है, मृत्यु उसे वियुक्त कर देती है। यौन अगर सिंथेटिक है तो मृत्यु एनालिटिक है। यौन संस्लिष्ट करता है मृत्यु विस्लिष्ट कर देती है। घटना एक ही है। घटना में कोई फर्क नहीं है।

सम्भूत ब्रह्म को जो ठीक से जान ले वह इसकी स्वीकृति को उपलब्ध होता है। स्वीकृति विजय है। जिस चीज को आपने स्वीकार कर लिया उसके आप मालिक हो गये।

दूसरी बात भी ख्याल में ले लें। ख्याल के लायक नहीं है दूसरी बात। ख्याल में लेने से आयेगी भी नहीं। पहली बात ख्याल में आ जाय तो पर्याप्त है। दूसरी बात तो और गहन अनुभव की है। असम्भूत ब्रह्म को जानने के लिए या तो जन्म के पहले जाना पड़े या मृत्यु के बाद जाना पड़े। उसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। इसलिए ज़ेन फ़कीर जापान में जब कोई साधक उनके पास जाता है तो उससे वह कहते हैं कि तू जा, ध्यान कर और पता लगा कि जन्म के पहले तेरा चेहरा कैसा था! "व्हाट्स योर ओरीजनल फेस ?" यह नहीं जो अभी है। यह नहीं जो कल था, यह नहीं जो परसों था।...ओरिजनल-- जो जन्म के पहले था, क्योंकि यह चेहरा तो तेरे मां बाप से मिला है, तेरा नहीं है। यह आंख का रंग तेरे मां बाप से मिला है तेरा नहीं है। यह नाक तेरे मां बाप से मिली है तेरी नहीं है। यह चमड़ी का रंग तेरे मां बाप से मिला है, तेरा नहीं है। अगर नीग्रो मां बाप होते तो यह काला हो जाता। अगर अंग्रेज मां बाप होते तो ये गोरा हो जाता। यह 'पिगमेंट' शरीर के रंग का, यह तो तेरे मां बाप से मिला है। यह अपना नहीं है। यह खुद का चेहरा नहीं है। खुद का चेहरा तो जन्म के पहले मिल सकता है या मौत के बाद मिल सकता है।

जन्म के पहले लौटना बहुत मुश्किल है। असम्भूत ब्रह्म को जन्म के पहले जानना

बहुत मुश्किल है। पहले तो मैंने कहा, असम्भूत ब्रह्म को सम्भूत ब्रह्म के मुकाबले जानना बहुत मुश्किल है। अब मैं आपसे कहता हूं, दो उपाय हैं –या तो जन्म के पहले रिग्रेस कर जायं। ध्यान में इतने पीछे चले जायं उतर कर कि जन्म के पहले चले जायं तो असम्भूत का अनुभव हो। दूसरा उपाय यह है कि ध्यान में इतने आगे बढ़ जायं कि मर जायं और मौत के आगे निकल जायं, तो असम्भूत ब्रह्म का अनुभव हो जायगा। इन दोनों में मरने का प्रयोग आसान है। क्योंकि वह भविष्य है। पीछे लौटना असम्भव है, आगे ही जाना सम्भव है। बचपन के वस्त्र पहनने बहुत मुश्किल हैं, गर्भ में वापस लौटना अति कठिन है क्योंकि बहुत संकरा होता जाता है मार्ग। लेकिन ढीले वस्त्र, मौत के ढीले वस्त्र पहनने बहुत आसान हैं। मार्ग विस्तीर्ण होता चला जाता है। ध्यान रहे, जन्म का द्वार बहुत छोटा है, मृत्यु का द्वार बहुत बड़ा है। दोनों में मृत्यु आसान है। वैसे जन्म के पार भी जाना सम्भव है। उसकी भी प्रक्रियाएं हैं, उसके भी मार्ग हैं, लेकिन अति कठिन हैं। मैं जिस ध्यान की बात कर रहा हूं वह मृत्यु का प्रयोग है। वह मृत्यु में छलांग है। अपने हाथ से मरकर देखना है। अगर घटना घट जाय और जानते हुए आप मृत्यु में उतर जायं और ऐसे हो जायं जैसे नहीं हैं तो असम्भूत का चेहरा दिखायी पड़ेगा। वह चेहरा दिखायी पड़ेगा जो जन्म के पहले है और मृत्यु के बाद है, वह भी चेहरा है। प्रक्रिया भले ही दो हो जायं, पर बिन्दु वह एक ही है। आप चाहे पीछे लौटकर उस बिन्दु को देखें, चाहे आगे जाकर उस बिन्दु को देखें, लेकिन सरल है आगे जाना। इसलिए मेरा आग्रह मृत्यु पर है। मैं यह नहीं कहता कि आप लौटकर देखें जन्म के पहले क्या चेहरा था, मैं कहता हूं जरा आगे बढ़ के झांक कर देखें कि मृत्यु के बाद क्या चेहरा होगा।

मृत्यु स्वेच्छा से स्वीकृत, ध्यान बन जाती है। और अगर कोई व्यक्ति इस मृत्यु को सिर्फ थोड़े ही क्षणों में न जीना चाहे, बल्कि पूरे जीवन में जीना चाहे तो संन्यास बन जाता है। संन्यास का अर्थ है जीते जी इस तरह से जीना जैसे मर गये।

एक जेन फकीर हुआ है बोकोजू। संन्यास लिया उसने। गांव से गुजरता था, किसी आदमी ने गालियां दीं। उसने खड़े होकर सुनीं। पास की दूकान के मालिक ने कहा, खड़े होकर सुन रहे हो? वह गालियां दे रहा है। बोकजू ने कहा, 'बट नाऊ आई ऐम डेड,' लेकिन मैं मरा हुआ आदमी हूं। अब मैं जवाब कैसे दे दूं? उस आदमी ने कहा, मरे हुए आदमी? पूरी तरह जीते हुए दिखायी पड़ रहे हो! तो बोकुजू ने कहा, जब मर ही जाऊंगा, तब मरने में मेरा क्या गुण होगा। जीते जी मर रहा हूं। इसमें कुछ मेरा गुण है। जब मर ही जाऊंगा, तब तो मरूंगा ही। तब तो सभी मरते हैं। मैं तो जीते जी मर गया हूं। उस होटल के मालिक ने कहा, हम कुछ समझे नहीं। तो

बोकोजू ने कहा, जन्म तो अनजाने में हो गया, अब मृत्यु से जानकर गुजरना चाहता हूं। जन्म के वक्त चूक गया एक मौका, जबकि उसे जान सकता था, जो जन्म के पहले था, वह चूक गया।' दैट अपरचुनेटी हैज बीन मिस्ड।' लेकिन ध्यान रहे, अगर मृत्यु अचानक आयेगी, जैसा कि जन्म आया था तो उसको भी चूक जायेंगे। लेकिन अगर आपने तैयारी करके मृत्यु को दरवाजा दिया, आप तैयार रहे, तो ठीक है। संन्यास का मतलब भी यही है। मरना अपनी तरफ से, स्वेच्छा से, 'वालंटरी डेथ।' मरते जाना, ऐसे होते जाना जैसे मर ही गये। जब कोई गाली दे तो जानना कि मैं मर गया हूं। जब आप मर जायेंगे और आपकी कब्र पर कोई खड़े होकर गाली देगा तब आप क्या करेंगे? वही करना! जब आप मर जायेंगे और आपकी खोपड़ी कहीं पड़ी होगी और कोई लात मारेगा तो जो उस वक्त करें, वही अभी भी करना। संन्यास का अर्थ यही है। तो हम असम्भूत ब्रह्म में उतर जायेंगे। और नहीं तो मौत का अवसर भी चूक जायेगा। और ऐसा नहीं कि एक दफा, कई दफा चूके। जन्म का भी कई बार चूका है, इस बार तो चूका ही है, इसके पहले जन्म का, अनेक बार का चूका, और मृत्यु का अनेक बार चूका। हम कोई नये नहीं हैं मरने और जीने में, पुराने अभ्यासी हैं। बहुत बार जन्म ले चुके, बहुत बार मर चुके, 'आफेन एडेक्टेड' हैं। यह ढंग हो गया है हमारा, पर यह ढंग आगे भी चलाना है या नहीं चलाना है, यह निर्णय लेना चाहिए। अभी एक अवसर आगे आ रहा है मौत का। उस अवसर के लिए तैयारी करते जाना चाहिए तो असम्भूत में प्रवेश हो जायेगा। जो असम्भूत में प्रवेश करता है, ऋषि कहता है, वह अमृत को जान लेता है। जो सम्भूत को जान लेता है वह मृत्यु को जीत लेता है, जो असम्भूत में प्रवेश करता है वह अमृत को जान लेता लेता है। क्योंकि जब हम मृत्यु में पूरी तरह प्रवेश कर जाते हैं, सब भांति मर जाते हैं और फिर भी पाते हैं कि नहीं मरे, तो अमृत की उपलब्धि हो गयी। जब कोई गाली देता है और आप मुर्दे की भांति होते हैं और फिर भी जानते हैं कि मैं हूं, और गाली का उत्तर नहीं आता। जब कोई आपका हाथ काट दे, गर्दन काट दे, और गर्दन कटती हो, तब भी आप जानते हैं कि गर्दन कट रही है, फिर भी मैं हूं, तो अमृत का द्वार खुल गया। मृत्यु से जो बचेगा, अमृत से वंचित रह जायेगा। मृत्यु में जो उतरेगा वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है। असम्भूत ब्रह्म को जान लेना अमृत की उपलब्धि है क्योंकि असम्भूत अमृत है। वह जन्म के पहले और मृत्यु के बाद है इसलिए अमृत है। न वह कभी जन्मता है इसलिए उसके मरने का कोई उपाय नहीं।

आचार्यश्री वचनामृत

* शब्द, नाम, सिद्धांत, शास्त्र आदि सब उन्हीं के लिये खोजने पड़े हैं जो केवल दूर ही देख सकते हैं। और इसलिये उनका परमात्मा से कोई संबंध नहीं है। उनका संबंध केवल "निकट के प्रति जो अंधे हैं" बस उनसे ही है।

* जीवन असुरक्षा है। और यही उसकी पुलक है। यही उसका सौंदर्य है।

* भीतर जब सब जलता है, तभी तो वह जन्मता है।

* मिट और जान। खो और पा!

* संन्यास का जन्म है—स्वयं में, स्वयं से, स्वयं का।

* नदी की भांति जीना है। सरोवर की भांति नहीं।

* सरोवर गृहस्थ है। सरिता संन्यासी है।

* अब संन्यासी को कहना है कि मैं किसी धर्म का नहीं हूं, क्योंकि समस्त धर्म ही मेरे हैं।

* संसार से टूटा हुआ संन्यास रक्त हीन हो जाता है। और संन्यास से टूटा हुआ संसार प्राण हीन। इसलिये दोनों के बीच पुनः सेतु निर्मित करने हैं।

* संन्यास दायित्वों से भागने का नाम नहीं है।

* परिवार नहीं छोड़ना है, वरन सारे संसार को ही परिवार बनाना है।

* धार्मिक व्यक्ति स्वयं नहीं जीता है; उसमें तो प्रभु ही जीता है।

* धर्म की अंतरात्मा सदा-सर्वदा एक है, एक रस है।

* बिना प्यास पैदा हुए निकट में निर्मल जल से भरा सरोवर भी व्यर्थ है।

* ऐसा धर्म चाहिये जो जीवन के बीच संन्यास को संभव बना दे!

* वृक्षों में ही नहीं मनुष्यों में भी तो फूल लगते हैं। ऐसे फूलों की तलाश ही धर्म है।

* स्वयं में डूबने में है गहराई भी और ऊंचाई भी—और एक ही साथ।

* जड़ें अन्त नहीं आरंभ हैं, अन्त तो सदा फूलों पर ही होता है।

* खोजो तो रूप में अरूप मिलता है। खोजो तो पदार्थ में परमात्मा मिलता है।

* उनके सौभाग्य का क्या कहना जिनके हृदय में सिवाय प्रेम के और कुछ भी शेष नहीं रह जाता है।

★

माउंटआबू : ध्यान शिविर

आचार्य श्री रजनीश के सान्निध्य में

इस शिविर में ध्यान के प्रयोग और आध्यात्मिक प्रवचन का कार्यक्रम आयोजित किया गया है

२५ मार्च १९७२ से २ अप्रैल १९७२ तक

शिविर में सम्मिलित होने की लालसा रखने वाले महानुभाव विस्तृत जानकारी के लिए नीचे लिखे पते पर सम्पर्क स्थापित करें :

जीवन जागृति केन्द्र
म्युनिसिपल स्कूल के सामने
खाड़िया चार रास्ता,
अहमदाबाद–१ **फोन : २४०८३**

आगामी कार्यक्रम

•

२५ मार्च से २ अप्रैल	ध्यान शिविर	माउंट आबू
१३ अप्रैल से १९ अप्रैल	अमृत स्टडी सर्किल (लाओत्से पर चर्चा)	पाटकर हाल, बंबई

संपर्क करें :

जीवन जागृति केन्द्र **फोन : ३३९५६०**
३२७६१८

३१ इजराइल मोहल्ला, भगवान भुवन
मस्जिद बंदर रोड, बम्बई

Statement about ownership and other particulars about Newspaper 'JYOTI SHIKHA' to be published in the First issue every year after last day of February

FORM IV
(See Rule 8)

1	Place of Publication	Bombay
2	Periodicity of its Publication	Quarterly
3	Printer's Name Nationality Address	Ishwarlal N. Shah Indian Jeevan Jagruti Kendra 31, Israel Mohalla, Bhagwan Bhuwan, Masjid Bunder Road, Bombay-9.
4	Publisher's Name Nationality Address	Ishwarlal N. Shah Indian Jeevan Jagruti Kendra 31, Israel Mohalla, Bhagwan Bhuwan, Masjid Bunder Road, Bombay-9.
5	Editors Name Nationality Address	Mahipal Indian. Vijay Mahal, D Road, Churchgate, Bombay-20. Prof. Arvind Indian Kamla Nehru Nagar, Jabalpur, (M.P.)
6	Name and address of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one percent of the total capital.	Jeevan Jagruti Kendra 31, Israel Mohalla, Bhagwan Bhuwan, Masjid Bunder Road, Bombay-9.

I, Ishwarlal N. Shah hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Ishwarlal N. Shah
Signature of Publisher

Date : 1-3-1972.

मुद्रक प्रकाशक : ईश्वरलाल एन. शाह, जीवन जागृति केन्द्र, ३१, इजराइल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बंदर रोड, बम्बई-९ मुद्रणस्थान : स्टेट्स पीपल प्रेस, बम्बई १

(कवर पेज २ से आगे)

* Earthen Lamps	4-50
* Path to Self Realization	4-00
* Philosophy of Non-Violence	0-80
* Who am I?	3-00
* Wings of Love & Randum Thoughts	3-50
* Mysteries Life:& Death	4-00
Critical Studies on Acharyaji	
* Acharya Rajneesh : A Glimpse	1-25
* Acharya Rajneesh : The Mystic of feeling	20-00
मराठी साहित्य	
* पथ प्रदीप	८–००
* प्रेम पुष्प	३–५०
* साधनापथ	३–००
* क्रांतिबीज	२–५०
* सिंहनाद	२–००
* प्रेमाचे पंख	०–७५
* अहिंसादर्शन	०–५०
* अमृतकण	०–५०
ગુજરાતી સાહિત્ય	રૂ. પૈ.
* અન્તર્યાત્રા	૫-૦૦
* સંભોગથી સમાધિ તરફ	૪-૦૦
* માટીના દિવા	૩-૫૦
* પંથના પ્રદીપ	૩-૦૦
* સાધના પથ	૩-૦૦
* ક્રાંતિબીજ (ભાષા હિન્દી)	૨-૫૦
* અજ્ઞાત પ્રતિ	૨-૦૦
* નવા સંકેત	૧–૭૫
* સત્યના અજ્ઞાત સાગરનું આમંત્રણ	૧–૫૦
* સૂર્ય તરફનું ઉડ્ડયન	૧–૦૦
* ગીતા પ્રવચન	૧–૦૦
* ધ્યાન	૦–૫૦
* પ્રેમ	૦–૫૦
* અભિનવ સંન્યાસ	૦–૫૦
* જીવન અને મૃત્યુ	૧–૦૦
* અમૃતકણ	૦–૫૦
* અહિંસાદર્શન	૦–૫૦
* કેટલીક જ્યોતિર્મય ક્ષણ	૦–૭૫
* નવા મનુષ્યના જન્મની દિશા	૦–૭૫
* તરૂણ વિદ્રોહ	૦–૫૦
* પ્રેમની પાંખે	૦–૭૫
* ભ્રાંત સમાજવાદ	૦–૩૦
* ધર્મ અને રાજકારણ	૦–૪૦
* અતીતની આલોચના, ભાવિનું ચિંતન	૦–૩૫
* ગાંધીમાં ડોકિયું અને સમાજવાદ	૦-૩૫
* હું કોણ છું	૩–૦૦
* સંકલ્પ	૦–૭૫
* પરિવાર	૦–૭૫
* સત્યમ્ શિવમ્ સુંદરમ્	૦–૬૦
* ધર્મ વિચાર નહિ ઉપચાર	૦–૬૦
* વ્યસ્તજીવનમાં ઈશ્વરનીખોજ	૦–૫૦
* ક્રાંતિની વૈજ્ઞાનિક પ્રક્રિયા	૦–૬૦

पुस्तकें मिलने का पता

जीवन जागृति केन्द्र

३१, इजराइल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बंदर रोड, बम्बई–९.

फोन : ३३९५६०–३२७६१८

* A-1 Woodland Apt., Peddar Rd., Bombay 26.

ज्योति शिखा

२४

मार्च · १९७२

जीवन जागृति केन्द्र